CC0. In Public Domain, Digi

नारदभक्तिसूत्र

एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान

स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
सरस्वतीनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

नारद-भक्ति-सूत्र

एवं

भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान

महादेवसिंह सं. विद्यालंकृत।
लीलासदन। आनंदबाग।
अहमदाबाद - ३८०००६
१३।१।८८

स्वामी विवेकानन्द

१- नमस्ते भक्तिकौसतु स्याम।। अथर्व...
४।७८।३। ... - पृ.५२०

(द्वितीय संस्करण)

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात्।
न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः।। भाग.।।
भाग.पु.।। ७।१।२६।। ३२०

तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा।
स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात्कथञ्चिन्नेक्षते पृथक्।।
कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः।।
भाग.पु.।। ७।१।२५ ...

श्रीरामकृष्ण आश्रम
नागपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक—
स्वामी भास्करेश्वरानन्द
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम
धन्तोली, नागपुर-१२

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्प संख्या ६९

(श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर द्वारा सर्वाधिकार स्वरक्षित)

(व ७२ : प्र ६०)

मूल्य रु. १.२०

मुद्रक—
रा. का. बेंडेकर
शिवशक्ति प्रेस, प्रा. लि
ग्रेट नागरोड, नागपुर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

दो शब्द

स्वामी विवेकानन्दकृत 'नारद-भक्ति-सूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान' का यह द्वितीय संस्करण है। इस पुस्तक में स्वामीजी के व्याख्यान, कुछ प्रवचनों का सारांश तथा लेख संगृहीत किये गये हैं।

भक्तिशास्त्रसम्बन्धी ग्रन्थों में 'नारदभक्तिसूत्र' का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। स्वामी विवेकानन्द द्वारा किया हुआ नारदभक्तिसूत्रों का यह मुक्त अनुवाद भक्तिमार्ग के पथिकों के लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होगा। स्वामी विवेकानन्दजी के भक्तिसम्बन्धी प्रवचन तथा व्याख्यान हमें भक्तियोग की स्पष्ट व्याख्या प्रदान करते हैं; साथ ही उनके द्वारा भक्ति की महिमा भी प्रकट होती है। भक्तिसाधना सफल होने के लिए किन विशिष्ट गुणों की आवश्यकता है, यह विषय भी बड़े हृदयग्राही ढंग से स्वामीजी ने इस पुस्तक में स्पष्ट कर दिया है। स्वामीजी द्वारा कथित एवं लिखित विल्वमंगल और बालक गोपाल की कथाएँ भी इस पुस्तक में सम्मिलित हैं। इन आख्यानों से यह स्पष्टरूपेण जाना जा सकेगा कि ये गुण भक्त के जीवन में किस तरह प्रकट होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक साधकों को नवीन उत्साह तथा प्रेरणा प्रदान कर भगवद्दर्शन के लक्ष्य की ओर अग्रसर कराने में सहायक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक में संगृहीत सभी प्रवचन, लेख आदि अद्वैत आश्रम मायावती द्वारा प्रकाशित 'विवेकान्द साहित्य' से संकलित किये गये हैं।

नागपुर,
१६ फरवरी १९७२

—प्रकाशक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-[illegible] [illegible]
[illegible], [illegible]
वाराणसी-5

अनुक्रमणिका

१	नारद-भक्ति-सूत्र ..	१
२.	भक्तियोग के पाठ ..	१०
३.	मातृ–पूजा ..	२३
४.	मन्त्र और मन्त्र-चैतन्य ..	३०
५.	ईश्वरत्व की धारणा ..	३२
६.	शिष्यत्व ..	३३
७.	बिल्वमंगल ..	५५
८.	बालक गोपाल की कथा ..	६०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भरतनिधि,
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी विवेकानंद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

नारद-भक्ति-सूत्र

एवं

भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान

नारद-भक्ति-सूत्र

(अमेरिका में स्वामीजी द्वारा लिखाया हुआ मुक्त अनुवाद)

अध्याय १*

१. भक्ति ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग है।

२. यह प्रेम का अमृत है;

---

*अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः। सा त्वस्मिन् पर (म) प्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किंचिद् वांछति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति। यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति। सा न कामयमाना, निरोधरूपत्वात्। निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः। तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च। अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता। लोकवेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता। भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम्। अन्यथा पातित्य (त) शंकया। लोकोऽपि तावदेव; भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि। तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामत-भेदात्। पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः। कथादिष्विति गर्गः। आत्म-रत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः। नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति (च)। अस्त्येवमेवम्। यथा व्रजगोपिकानाम्। तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः। तद्विहीनं जाराणामिव। नास्त्येव तस्मिन् तत्सुखसुखित्वम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. इसे पाकर मनुष्य पूर्ण, अमर, और सदा के लिए सन्तुष्ट हो जाता है;

४. इसे पाकर मनुष्य में इच्छाएँ नहीं रह जातीं, वह किसी से ईर्ष्या नहीं करता, उसे दिखावे में आनन्द नहीं आता।

५. इसे जानकर मनुष्य आध्यात्मिकता से भर जाता है, शान्त हो जाता है और केवल ईश्वर में आनन्द पाता है।

६. इसका किसी इच्छा की पूर्ति के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता, स्वयं सब इच्छाओं का निरोध करती है।

७. संन्यास उपासना के लौकिक और शास्त्रीय रूपों का परित्याग है।

८. भक्त-संन्यासी वह है, जिसकी सम्पूर्ण आत्मा ईश्वर को अर्पित हो जाती है, और जो ईश्वर-प्रेम में बाधक होता है, उसे वह त्याग देता है।

९. सब अन्य शरणों को छोड़कर, वह ईश्वर में शरण लेता है।

१०. शास्त्रों का अनुसरण उसी समय तक विहित है, जब तक जीवन में दृढ़ता न आयी हो।

११. नहीं तो मुक्ति के नाम पर अशुभ किये जाने की आशंका रहती है।

१२. जब प्रेम दृढ़ हो जाता है, तो जीवन धारण करने के लिए आवश्यक सामाजिक व्यवस्था बन्धनों के अतिरिक्त, शेष सब सामाजिक रूप भी त्याग दिये जाते हैं।

१३. प्रेम की बहुत-सी परिभाषाएँ दी गयी हैं, पर नारद जिन्हें प्रेम का चिह्न बताते हैं, वे हैं: जब मन, वचन और कर्म सब ईश्वरार्पित कर दिये जाते हैं और जब तनिक देर के लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईश्वर का बिसरना भी मनुष्य को अत्यन्त दुःखी कर देता है, तो प्रेम आरम्भ हो गया है।

१४. जैसा कि गोपियों को हुआ था—

१५. इसलिए कि यद्यपि वे ईश्वर को अपने प्रेमी की भाँति पूजती थीं, वे कभी उसके ईश्वर-रूप को नहीं भूलीं।

१६. ऐसा करतीं, तो वे व्यभिचार की दोषी होतीं।

१७. यह प्रेम का उच्चतम रूप है, क्योंकि इसमें प्रतिदान-प्राप्ति की इच्छा नहीं होती, जो समस्त मानवीय प्रेम में पायी जाती है।

अध्याय २*

१. भक्ति कर्म से ऊँची है, ज्ञान से ऊँची है, योग (राजयोग) से ऊँची है, क्योंकि भक्ति स्वयं अपना फल है, भक्ति साधन और साध्य (फल), दोनों है।

२. जिस प्रकार मनुष्य अपनी भूख केवल भोजन के ज्ञान अथवा दर्शन मात्र से नहीं बुझा सकता, उसी प्रकार जब तक प्रेम नहीं होता, मनुष्य ईश्वर के ज्ञान से अथवा उसकी अनुभूति से भी, सन्तुष्ट नहीं हो सकता, इसलिए प्रेम सर्वोपरि है।

---

*सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा। फलरूपत्वात्। ईश्वरस्याप्यभिमान-(नि) द्वेषित्वात् दैन्यप्रियत्वात् च। तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके। अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये। स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमार (ा):। राजगृहभोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात्। न तेन राजा परितोषः क्षु (धाशा) च्छान्तिर्वा। तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय ३*

१. आचार्यों ने, फिर भी, भक्ति के विषय में ये बातें कही हैं :

२. जो इस भक्ति को चाहता है, उसे इन्द्रिय-भोग और लोगों का संसर्ग भी त्याग देना चाहिए।

३. दिन-रात उसे भक्ति के विषय में सोचना चाहिए, अन्य किसी विषय में नहीं।

४. जहाँ लोग ईश्वर का कीर्तन करते या उसकी चर्चा करते हैं, उसे वहाँ (जाना चाहिए।)

५. भक्ति का मुख्य कारण किसी महान् (अथवा मुक्त) आत्मा की कृपा होती है।

६. महात्मा की संगति पाना कठिन है, और उससे सदा आत्मा का उद्धार होता है।

---

* तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः। तत्तु विषयत्यागात् संगत्यागात् च। अव्यावृत्त (त) भजनात्। लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात्। मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् वा। महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव। तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्। तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्। दुस्संगः सर्वथैव त्याज्यः। कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश (सर्वनाश) कारणत्वात्। तरंगायिता अपीमे संगात् समुद्रायन्ते (न्ति)। कस्तरति कस्तरति मायाम्? यः संगं (गान्) त्यजति, यो महानुभावं सेवते, निर्ममो भवति। यो विविक्तस्थानं सेवते, यो लोकबन्ध-मुन्मूलयति, (यो) निस्त्रैगुण्यो भवति, (यो) योगक्षेमं त्यजति। यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यस्यति, ततो निर्द्वन्द्वो भवति। (यो) वेदानपि संन्यस्यति; केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते। स तरति स तरति, स लोकांस्तारयति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. ईश्वर की अनुकम्पा से हमें ऐसे गुरु प्राप्त होते हैं।

८. ईश्वर और उसके भक्तों के बीच कोई भेद नहीं रहता।

९. अतः इसकी खोज करो।

१०. कुसंग से सदा दूर रहना चाहिए;

११. क्योंकि इससे वासना और क्रोध, भ्रम, ध्येय की विस्मृति, इच्छा-शक्ति की हीनता (लगन का अभाव) और सब कुछ का विनाश उत्पन्न होता है।

१२. ये व्याघात आरम्भ में लघु लहरियों के समान हो सकते हैं, पर कुसंग अन्त में उन्हें सागर के समान बना देता है।

१३. वह माया को पार कर लेता है, जो सब छोड़ देता है, महात्माओं की सेवा करता है, एकान्तवास करता है, संसार की बेड़ियाँ काटता है, प्रकृति के गुणों से अतीत हो जाता है, और अपनी जीविका के लिए भी ईश्वर पर निर्भर होता है।

१४. वह, जो कर्म के फलों को त्यागता है, जो सब कर्मों को और दुःख तथा सुख के द्वन्द्व को त्याग देता है, जो धर्मशास्त्रों को भी त्यागता है, वह ईश्वर का अखण्ड प्रेम प्राप्त करता है।

१५. वह इस नदी को पार कर लेता है और दूसरों को भी पार जाने में सहायता देता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय ४*

१. भक्ति का स्वरूप अनिर्वचनीय है।

२. जिस प्रकार गूँगा मनुष्य अपने स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, पर उसकी चेष्टाएँ उसके भावों को दर्शाती हैं, उसी प्रकार मनुष्य वाणी से प्रेम का वर्णन नहीं कर सकता, पर उसकी क्रियाएँ उसे प्रकट करती हैं।

३. कुछ विरले मनुष्यों में इसकी अभिव्यक्ति होती है।

४. सब गुणों, सब इच्छाओं से परे, सदैव वृद्धिमान, अखण्ड, सर्वोत्तम अनुभूति प्रेम है।

५. जब मनुष्य को यह प्रेम प्राप्त होता है, तो वह सर्वत्र प्रेम देखता है, सब जगह प्रेम सुनता है, सब जगह प्रेममय होकर बोलता है और चिन्तन करता है।

६. गुणों और अवस्थाओं के अनुसार यह प्रेम अपने को

---

* अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्। प्रकाश (श्य) ते क्वापि पात्रे। गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्। तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति, (तदेव भाषयति) तदेव चिन्तयति। गौणी त्रिधा, गुणभेदाद् आर्तादिभेदाद् वा। उत्तरस्मादुत्तरस्मात् पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति। अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ। प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् (च)। शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च। लोकहानौ चिन्ता न कार्या; निवेदितात्मलोकवेद (शील) त्वात्। न त (द) त्सिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः, किं तु फलत्यागः तत्साधनं च (कार्यमेव)। स्त्रीधननास्तिक (वैरि) चरित्रं न श्रवणीयम्। अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्। तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम्। त्रिरूपभंगपूर्वकं नित्यदास्य(स) नित्यकान्ताभजनात्मकं प्रेम कार्यं प्रेमैव कार्यम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभिन्न रूपों में व्यक्त करता है।

७. गुण हैं : तमस् (मन्दता, भारीपन), रजस् (अशान्ति, क्रियाशीलता), सत्त्व (निर्दोषता, शुद्धता); और अवस्थाएँ हैं : आर्त (दुःखी), अर्थार्थी (याचक), जिज्ञासु (सत्यान्वेषी), ज्ञानी (ज्ञाता)।

८. इनमें परवर्ती अपने पूर्ववर्तियों से उच्चतर हैं।

९. भक्ति उपासना का सरलतम मार्ग है।

१०. यह स्वयं अपना प्रमाण है, इसे दूसरे की आवश्यकता नहीं है।

११. इसकी प्रकृति शान्त और पूर्णानन्दमय है।

१२. भक्ति कभी किसी को अथवा किसी वस्तु को हानि नहीं पहुँचाना चाहती, पूजा की लोक-विधियों को भी नहीं।

१३. विषय-भोग के विषय में वार्तालाप, अथवा ईश्वर पर सन्देह अथवा अपने शत्रुओं द्वारा आलोचना की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

१४. अहंकार, गर्व इत्यादि को त्याग देना चाहिए।

१५. यदि इन भावों का नियन्त्रण नहीं किया जा सकता, तो उन्हें ईश्वर को अर्पित कर दो और अपने सब कर्म उसे सौंप दो।

१६. प्रेम, प्रेमी और प्रेम-पात्र की त्रिमूर्ति का विलयन कर, उसके चिरन्तन दास के रूप में, उसकी चिरन्तन दुलहन की भाँति ईश्वर की उपासना करनी चाहिए—इस प्रकार ईश्वर से प्रेम किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय ५*

१. वह प्रेम सर्वोपरि है, जो ईश्वर में केन्द्रित होता है।

२. जब ऐसे लोग ईश्वर की बात करते हैं, तो उनकी वाणी रुँध जाती है, वे सिसकते और रोते हैं; ऐसे लोग हैं, जो पवित्र स्थानों को उनकी पवित्रता देते हैं; वे शुभ कार्यों को शुभतर और सुन्दर पुस्तकों को सुन्दरतर करते हैं, क्योंकि वे ईश्वर से परिव्याप्त होते हैं।

३. जब कोई मनुष्य ईश्वर को इतना प्रेम करता है, तो उसके पितर हर्ष मनाते हैं, देवता नृत्य करते हैं और पृथ्वी को

---

* भक्ता एकान्तिनो मुख्याः। कण्ठावरोधरोमांचाश्रुभिः परस्परं लपमानः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्लि कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि। तन्मयाः। मोदन्ते पितरो। नृत्यन्ति देवताः, सनाथा चेयं भूर्भवति। नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः। यतस्तदीयाः। वादो नावलम्ब्यः। बाहुल्यावकाशत्वाद् अनिय (न्त्रि) तत्वाच्च। भक्तिशास्त्राणि मननीयानि त (द्) द्बोधककर्माणि करणीयानि। सुख-दुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रती (क्ष्य) क्षमाणे क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेयम्। अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्र्याणि परिपालनीयानि। सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तैः (न्तितैः) भगवानेव भजनीयः। स कीर्त्यमानः (कीर्तनीयः) शीघ्रमेवाविर्भवत्यनुभावयति (च) भक्तान्। त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी, भक्तिरेव गरीयसी। गुणमाहात्म्यासक्ति- रूपासक्ति- पूजासक्ति - स्मरणासक्ति - दास्यासक्ति - सख्यासक्तिवात्सल्यासक्ति-कान्तासक्ति-आत्मनिवेदनासक्ति-तन्मयतासक्ति-परमविरहासक्तिरूपा एकधा अपि एकादशधा भवति। इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भयाः एकमताः कुमार-व्यास-शुक-शाण्डिल्य-गर्ग-विष्णु-कौण्डिन्य-शेषोद्धवारुणि-बलि-हनुमद्-विभीषणादयो भक्त्याचार्याः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक गुरु प्राप्त होता है !

४. ऐसे प्रेमियों के लिए जाति, लग, ज्ञान, रूप, जन्म, अथवा सम्पत्ति का भेद नहीं रहता;

५. क्योंकि वे सब ईश्वर की हैं।

६. विवादों से दूर रहना चाहिए;

७. क्योंकि उनका कहीं अन्त नहीं है, और वे किसी सन्तोषजनक परिणाम पर नहीं पहुँचाते।

८. इस प्रेम का विवरण देनेवाली पुस्तकें पढ़ो और ऐसे कार्य करो, जो इसमें वृद्धि करते हैं।

९. सुख और दुःख, लाभ और हानि की सब इच्छाओं को छोड़कर दिन-रात ईश्वर की उपासना करो। एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाओ।

१०. अहिंसा, सत्य, शुद्धता, दया और दैवी सम्पद् का सदा पालन करो।

११. अन्य सब विचारों को त्यागो, पूर्ण मन से दिन-रात ईश्वर की उपासना करो। इस प्रकार दिन और रात पूजित होकर वह अपने को प्रकट करता है और अपने उपासकों को अपनी अनुभूति कराता है।

१२. भूत, वर्तमान और भविष्य में, प्रेम ही सर्वोपरि है !

इस प्रकार प्राचीन ऋषियों के अनुसार, हमने संसार के व्यंगों से निर्भीक होकर, प्रेम के सिद्धान्त के प्रचार का साहस किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तियोग के पाठ

भक्ति द्वारा योग

हम राजयोग और शारीरिक व्यायाम पर विचार कर रहे थे। अब भक्ति के द्वारा योग पर विचार करेंगे। पर तुम्हें याद रखना चाहिए कि कोई भी एक प्रणाली अनिवार्य नहीं है। मैं तुम्हारे सामने बहुत-सी प्रणालियाँ, बहुत से विचार, इसलिए रखना चाहता हूँ कि तुम उनमें से उसे चुन सको, जो तुम्हारे लिए उपयुक्त हो; यदि एक उपयुक्त नहीं है, तो शायद दूसरी निकल आये।

हम ऐसे सामंजस्ययुक्त व्यक्ति बनना चाहते हैं, जिसमें हमारी प्रकृति के मानसिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक और क्रियावान पक्षों का समान विकास हुआ हो। जातियाँ और व्यक्ति इनमें से एक पार्श्व अथवा प्रकार का विकास व्यक्त करती हैं और वे उस एक से अधिक को नहीं समझ पातीं। वे एक आदर्श में ऐसी ढल जाती हैं कि किसी अन्य को नहीं देख सकतीं। वास्तविक आदर्श यह है कि हम बहुपार्श्वीय बनें। वास्तव में जगत् के दुःख का कारण यह है कि हम इतने एकपार्श्वीय हैं कि दूसरे के प्रति सहानुभूति नहीं कर पाते। एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करो, जो धरती के भीतर से एक खान के द्वार से सूर्य को देखता है; उसे सूर्य का एक पहलू दिखायी देता है। दूसरा सूर्य को पृथ्वी के धरातल से देखता है, एक कुहरे और धुँध में से, एक पर्वत की चोटी पर से; प्रत्येक को सूर्य भिन्न दिखायी देगा। इस प्रकार दृश्य अनेक हैं, पर वास्तव में सूर्य केवल एक है। भेद दृष्टि का है, पर वस्तु एक है; और वह सूर्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्येक मनुष्य में उसकी प्रकृति के अनुसार विशिष्ट प्रवृत्ति होती है और वह कुछ आदर्श स्वीकार कर लेता है और उन तक पहुँचने के लिए विशिष्ट मार्ग अपनाता है। पर लक्ष्य सब के लिए सदा एक है। रोमन कैथोलिक गम्भीर और आध्यात्मिक है, पर उसने व्यापकता खो दी है। यूनिटेरियन व्यापक है, पर उसने आध्यात्मिकता खो दी है और वह धर्म को विभक्त महत्त्व का समझता है। हमें आवश्यकता है रोमन कैथोलिक की गहराई और यूनिटेरियन की व्यापकता की। हम आकाश के समान विस्तीर्ण और सागर के समान गम्भीर हों; हममें धर्मान्ध का-सा उत्साह, रहस्यवादी-सी गम्भीरता और अज्ञेयवादी-सी व्यापकता होनी चाहिए। 'सहिष्णुता' शब्द ने उस घमण्डी मनुष्य का अप्रीतिकर संसर्ग प्राप्त कर लिया है, जो अपने को उच्च स्थान में समझकर अपने साथी प्राणियों को दया की दृष्टि से देखता है। मन की यह स्थिति भयानक है। हम सब उसी दिशा में, एक ही गन्तव्य की ओर, पर विभिन्न प्रकृतियों की आवश्यकता के अनुसार उनके लिए उपयुक्त मार्गों से जा रहे हैं। हमें बहुपार्श्वीय होना चाहिए, वास्तव में हमें इतना नम्र हो जाना चाहिए कि हम दूसरे को केवल सहन ही न कर सकें, वरन्, जो उससे कहीं अधिक कठिन काम है, उसके साथ सहानुभूति कर सकें, उसके मार्ग में साथ चल सकें और उसकी महदाकांक्षा तथा ईश्वर की खोज में, जैसा वह अनुभव करता है, वैसा ही हम भी कर सकें। धर्म में दो तत्त्व होते हैं—सकारात्मक और नकारात्मक। उदाहरणार्थ, ईसाई धर्म में, जब तुम अवतार, त्रिदेव, ईसा के द्वारा मुक्ति की बात करते हो, तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। मैं कहता हूँ, "बहुत ठीक, इसे मैं भी सत्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानता हूँ।" पर जब तुम यह कहने लगते हो, "दूसरा कोई सच्चा धर्म है ही नहीं, ईश्वर अन्यत्र कभी प्रकट ही नहीं हुआ," तो मैं कहता हूँ, "ठहरो, यदि तुम किसी को वर्जित करते हो, अथवा किसी का खण्डन करते हो, तो मैं तुम्हारा साथ नहीं दे पाऊँगा।" प्रत्येक धर्म के पास देने को एक सन्देश है, मनुष्य को सिखाने के लिए कुछ वस्तु है; पर जब वह विरोध करने लगता है, दूसरों को छेड़ने लगता है, तो वह एक नकारात्मक और इसलिए एक खतरनाक रूप ले लेता है और नहीं जानता कि कहाँ आरम्भ करे और कहाँ अन्त।

प्रत्येक शक्ति एक चक्र पूरा करती है। वह शक्ति, जिसे हम मनुष्य कहते हैं, अनन्त ईश्वर से चलती है और उसे उसी में लौटना चाहिए। ईश्वर में लौटने की यह क्रिया दो में से एक प्रकार से पूरी होनी चाहिए—या तो प्रकृति का अनुसरण करते हुए पीछे सरकने में, अथवा स्वयं अपनी आन्तरिक शक्ति से, जो हमें मार्ग में रुकने को बाध्य करती है, जो यदि मुक्त छोड़ दिये जाने पर हमें एक चक्र में ईश्वर तक वापस ले जाती, और जो झटके से घूमकर ईश्वर को, मानो एक छोटे रास्ते से, पा लेती है। यही है, जो योगी करता है।

मैंने कहा है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुसार स्वयं अपना आदर्श निश्चित करना चाहिए। यह आदर्श उस मनुष्य का इष्ट कहलाता है। तुमको इसे पवित्र (और इसलिए गुप्त) रखना चाहिए और जब ईश्वर की उपासना करो, तो अपने इष्ट के अनुसार करो। हम उस विशेष रीति को किस प्रकार जान सकते हैं? यह बहुत कठिन है, पर जब तुम अपनी उपासना में लगे रहोगे, तो तुमको वह स्वतः ज्ञात हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जायगी। ईश्वर ने मनुष्य को तीन विशेष वस्तुएँ दी हैं—मनुष्य-शरीर, मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा, और जो पहले से मुक्त हैं, उनसे सहायता लेने की क्षमता। अब, बिना सगुण ईश्वर हुए भक्ति नहीं हो सकती। प्रेमी और प्रेमपात्र, दोनों होने चाहिए। ईश्वर अनन्तीकृत मानव है। ऐसा होना अनिवार्य है, क्योंकि जब तक हम मनुष्य हैं, हमें मानवीकृत ईश्वर चाहिए। हम एक सगुण ईश्वर को और केवल उसी को देखने को बाध्य हैं। सोचो कि इस संसार में हम जो कुछ देखते हैं, वह सब किस प्रकार केवल विषय मात्र नहीं होता, वरन् विषय+हमारा मन होता है। कुर्सी+तुम्हारे मन पर कुर्सी की प्रतिक्रिया, वास्तविक कुर्सी है। तुम प्रत्येक वस्तु को अपने मन से रँग देते हो, केवल तभी तुम उसे देख सकते हो। (उदाहरण : एक सफेद, वर्गाकार, चमकदार, कठोर बॉक्स उसे क्रमशः तीन इन्द्रियों, चार इन्द्रियों, और फिर पाँच इन्द्रियोंवाले मनुष्य देखते हैं। केवल अन्तिम ही उसे उल्लिखित सभी गुणों सहित देखता है, और उसके पूर्व के प्रत्येक ने अपने से पहलेवाले की अपेक्षा उसका एक गुण अधिक देखा है। अब कल्पना करो कि कोई छः इन्द्रियोंवाला मनुष्य उस बॉक्स को देखता है, तो उसे इनके अतिरिक्त बॉक्स का एक गुण और दिखायी देगा।)

क्योंकि मैं प्रेम और ज्ञान देखता हूँ, इसलिए मैं जानता हूँ कि वह सार्वभौमिक कारण इस प्रेम और ज्ञान को प्रकट कर रहा है। जो मुझमें प्रेम उत्पन्न करता है, वह प्रेमहीन कैसे हो सकता है? हम मानवीय गुणों से रहित सार्वभौमिक कारण की कल्पना नहीं कर सकते। ईश्वर को ब्रह्माण्ड में अपने से अलग देखना, पहले कदम के रूप में आवश्यक है। ईश्वर के तीन दर्शन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं : निम्नतम दर्शन वह है, जब ईश्वर हमारे समान शरीरवान जान पड़ता है (बाइजैन्टाइन कला देखो); उच्चतर दर्शन वह है, जब हम ईश्वर पर मानवीय गुणों का आरोप करते हैं; और अन्ततः आगे बढ़ते-बढ़ते, जब हम ईश्वर को देखते हैं, तब हमें उच्चतम दिव्य दर्शन प्राप्त होता है।

पर याद रखो कि इन सब सोपानों में हम ईश्वर को और केवल ईश्वर को देख रहे हैं; इनमें न कोई भ्रम है, न भूल। उसी प्रकार, जिस प्रकार विभिन्न स्थानों से सूर्य को देखने पर भी वह सूर्य ही था, चन्द्रमा अथवा कुछ और नहीं हो गया था।

हम जैसे हैं—अनन्तीकृत—उस रूप में ईश्वर को देखे विना नहीं रह सकते, पर फिर भी वैसे ही, जैसे हम हैं। मान लो, हम ईश्वर की निरपेक्ष, परम रूप में कल्पना करने का प्रत्यन करें, पर आनन्द और प्रेम के निमित्त हमें फिर सापेक्षिक अवस्था में लौटना पड़ेगा।

ईश्वर की भक्ति, जैसी वह प्रत्येक धर्म में दिखायी देती है, दो भागों में विभाजित होती है : वह जो रूपों और अनुष्ठानों और शब्दों द्वारा कार्य करती है, और वह जो प्रेम द्वारा कार्य करती है। इस संसार में हम नियमों से बँधे हैं और सदा उन्हें तोड़कर निकल जाने का प्रयत्न करते रहते हैं; हम सदा नियमोल्लंघन का, प्रकृति को कुचलने का प्रयत्न करते रहते हैं। उदाहरण के लिए प्रकृति हमें घर नहीं देती, हम उन्हें बनाते हैं। प्रकृति ने हमें नग्न बनाया है, हम अपने को वस्त्रों से ढँकते हैं। मनुष्य का लक्ष्य मुक्त होना है, और बस, जहाँ तक हम प्रकृति के नियमों को तोड़ने में असफल रहते हैं, वहीं तक उन्हें सहन करते हैं। हम प्रकृति के नियमों का पालन इसलिए करते हैं कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियमों से परे--नियमों से बाहर निकल जायँ। जीवन का समस्त संघर्ष नियम न मानना है। (इसलिए मैं 'ईसाई वैज्ञानिकों' से सहानुभूति रखता हूँ, क्योंकि वे मनुष्य की स्वतन्त्रता और आत्मा के दिव्यत्व की शिक्षा देते हैं।) आत्मा सब परिस्थितियों से ऊपर है। 'ब्रह्माण्ड मेरे पिता का राज्य है; मैं उसका उत्तराधिकारी हूँ'--मनुष्य को यह भाव अपनाना चाहिए। 'मेरी आत्मा सब वशीभूत कर सकती है।'

मुक्ति तक पहुँचने से पहले हमें नियम से कार्य करना होगा। बाहरी सहायताएँ, और विधियाँ, रूप, अनुष्ठान, विश्वास, सिद्धान्त सब का अपना समुचित स्थान है और उनका उद्देश्य उस समय तक हमें सहारा देना और शक्ति प्रदान करना है, 'जब तक कि हम सशक्त न हो जायँ।' इसके बाद वे आवश्यक नहीं रह जातीं। वे हमारी धाय हैं और इस रूप में बचपन में अनिवार्य हैं। पुस्तकें भी धाय हैं, औषधियाँ धाय हैं। पर हमें वह समय लाने के लिए काम करना होगा, जब मनुष्य स्वयं अपने शरीर पर अपने स्वामित्व को पहचानने लगेगा। जड़ी-बूटियाँ और औषधियाँ हमारे शरीर पर उसी समय तक प्रभाव डालती हैं, जब तक हम उन्हें ऐसा करने देते हैं। जब हम सबल हो जाते हैं, तो बाहरी विधियों की आवश्यकता नहीं रहती।

शब्दों द्वारा भक्ति

शरीर मन का ही स्थूलतर रूप है, मन सूक्ष्मतर स्तरों से बना हुआ है और शरीर स्थूलतर स्तरों से; और जब मनुष्य का मन पूर्णतया उसके वश में आ जाता है, तो उसका शरीर भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके वश में आ जाता है। जिस प्रकार प्रत्येक मन का अपना विशिष्ट शरीर होता है, उसी प्रकार प्रत्येक शब्द एक विशिष्ट विचार का अंग होता है। जब हम क्रुद्ध होते हैं, तो पुरुष व्यंजनों में बोलते हैं—'बुद्धू', 'मूर्ख', 'गधा', आदि; जब हम करुण होते हैं, तो कोमल स्वरों का उपयोग करते हैं—'अरे राम!' निश्चय ही ये क्षणिक भाव हैं; पर चिरन्तन भाव भी होते हैं, जैसे प्रेम, शान्ति, स्थिरता, आनन्द, पवित्रता; और सब धर्मों में इन भावों की शब्दाभिव्यक्ति हुई है; शब्द मनुष्य के इन उच्चतम भावों के केवल शरीर हैं। विचार शब्द उत्पन्न करता है, और अपनी बारी आने पर शब्द विचार अथवा भाव उत्पन्न कर सकते हैं। यहीं शब्दों की सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसा प्रत्येक शब्द एक आदर्श का द्योतन करता है। हम सब इन पवित्र और रहस्यमय शब्दों को पहचानते और जानते हैं, किन्तु यदि हम उन्हें केवल पुस्तकों में पढ़ते हैं, तो वे हमें प्रभावित नहीं करते। उनके प्रभावशाली होने के लिए आवश्यक है कि वे आत्मा से आविष्ट हों और उनका स्पर्श तथा उपयोग कोई ऐसा व्यक्ति कर चुका हो, जिसे स्वयं परमात्मा की चेतना का स्पर्श प्राप्त हो और अब जीवित हो। केवल ऐसा ही पुरुष इस धारा को चालू कर सकता है। 'हाथ रखने की क्रिया' उसी धारा को चालू रखने की क्रिया है, जिसका आरम्भ ईसा ने किया था। जिसमें धारा-प्रवर्तन की यह शक्ति होती है, वह गुरु कहलाता है। ईसा जैसे महान् गुरुओं के लिए शब्दों का यह उपयोग आवश्यक नहीं है। पर 'छोटे लोग' इस धारा को शब्दों द्वारा संचारित करते हैं।

दूसरों के दोष न देखो। तुम मनुष्य को उसके दोषों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं जान सकोगे। (जैसे, हम सेव के किसी वृक्ष की उत्तमता का निर्णय उसके नीचे पड़े सड़े, कच्चे और अविकसित फलों के आधार पर करने लगें। जिस प्रकार उन फलों से वृक्ष की उत्तमता का पता नहीं चल सकता, उसी प्रकार मनुष्य के दोष उसके चरित्र को नहीं दर्शाते।) याद रखो कि बुरे लोग संसार भर में सदा एक से होते हैं। एशिया, यूरोप और अमेरिका में चोर और हत्यारे एक से हैं। उनकी स्वयं अपनी एक जाति है। विविधता तो केवल भलों और पवित्रों तथा शक्तिशालियों में ही मिलती है। दूसरों में बुराई न देखो। बुराई अज्ञान है, दुर्बलता है। लोगों को यह बताने से क्या लाभ कि वे दुर्बल हैं? आलोचना और खण्डन से कोई लाभ नहीं होता। हमें उन्हें कुछ ऊँची वस्तु देनी चाहिए; उन्हें उनके गरिमामय स्वरूप की, उनके जन्मसिद्ध अधिकार की बात बताओ और अधिक लोग ईश्वर की ओर क्यों नहीं आते? कारण यह है कि अपनी पाँच इन्द्रियों के बाहर बहुत कम लोगों को आनन्द आता है। अन्तर्जगत् में अधिकतर लोग न अपनी आँखों से देख सकते हैं और न अपने कानों से सुन सकते हैं।

प्रेम द्वारा उपासना

यह कहा गया है, 'गिरजे में पैदा होना तो अच्छा है, पर उसमें मरना नहीं।' जब वृक्ष पौधा होता है, तो वह चारों ओर की रुँधाई से सहारा और आरक्षण पाता है; पर जब तक बाड़ हटायी नहीं जाती, उस वृक्ष की वृद्धि और मजबूती को हानि पहुँचती है। औपचारिक पूजा, जैसा कि हमने देखा है, एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवश्यक अवस्था है; पर धीरे-धीरे, क्रमशः विकसित होकर हम उससे बाहर निकल जाते हैं और एक उच्चतर भूमि में पहुँच जाते हैं। जब ईश्वर के प्रति प्रेम पूर्ण हो जाता है, तो हम फिर ईश्वर के गुणों के बारे में नहीं सोचते कि वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और उन सब महान् विशेषणोंवाला है। हम ईश्वर से कुछ चाहते नहीं, इसलिए इन गुणों की ओर ध्यान देने की चिन्ता नहीं करते। हम केवल ईश्वर का प्रेम चाहते हैं। पर मनुष्यरूपता अब भी हमारे साथ रहती है। हम अपने मनुष्यपन से छुटकारा नहीं पा सकते, हम अपने शरीर से बाहर नहीं कूद आ सकते; इसलिए हमें ईश्वर से उसी प्रकार प्रेम करना होता है, जैसे कि हम एक दूसरे से प्रेम करते हैं।

मानव-प्रेम में पाँच अवस्थाएँ होती हैं।

१. निम्नतम सब से साधारण, 'शान्त' प्रेम है, जब हम रक्षा, भोजन आदि अपनी सभी आवश्यकताओं के निमित्त अपने पिता की ओर देखते हैं।

२. वह प्रेम, जो हममें सेवा-भाव जगाता है। मनुष्य ईश्वर की सेवा अपने स्वामी की भाँति करना चाहता है, सेवा की इच्छा सब भावनाओं से तीव्र हो जाती है; और हम इस बात के प्रति उदासीन हो जाते हैं कि स्वामी भला है अथवा बुरा, सदय है अथवा निर्दय।

३. मित्र का प्रेम, बराबरवालों का, साथियों का, सखाओं का प्रेम। मनुष्य ईश्वर को अपना सखा अनुभव करता है।

४. मातृवत् प्रेम। ईश्वर को शिशु समझा जाता है। भारत में इस प्रेम को पूर्वगामी प्रेम से ऊँचा माना जाता है, क्योंकि इसमें भय का तत्त्व बिल्कुल शेष नहीं रह जाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. पति और पत्नी का प्रेम; प्रेम के लिए प्रेम---ईश्वर सब प्रकार से पूर्ण प्रेमास्पद।

इस भाव को सुन्दरता के साथ व्यक्त किया गया है : 'आँखें चार होती हैं, दो आत्माओं में एक परिवर्तन आने लगता है; इन दोनों आत्माओं के बीच में प्रेम आ जाता है और दोनों को एक बना देता है।'

जब मनुष्य को यह अन्तिम और प्रेम का पूर्णतम रूप प्राप्त हो जाता है, तो सब इच्छाएँ विलीन हो जाती हैं, रूप और सिद्धान्त और सम्प्रदाय बिसर जाते हैं और मुक्ति की इच्छा (और सब धर्मों का उद्देश्य और लक्ष्य जन्म और मरण और दूसरी वस्तुओं से मुक्ति प्राप्त करना है) भी छूट जाती है। उच्चतम प्रेम वह प्रेम है, जिसमें नर-नारी की भावना नहीं होती, क्योंकि सर्वोच्च प्रेम में यह पूर्ण एकता अभिव्यक्त होती है, और लिंगत्व शरीरों को भिन्न करता है। इसलिए मिलन केवल आत्मा में ही सम्भव है। भौतिक भावना जितनी कम होगी, हमारा प्रेम उतना ही पूर्ण होगा; अन्त में सब भौतिक भावनाएँ बिसर जायँगी और दो आत्माएँ एक हो जायँगी। हम प्रेम करते हैं, सदा प्रेम करते हैं। प्रेम आता है, रूपों को बेध जाता है और उनसे परे देखता है। यह कहा गया है, 'प्रेमी हब्शिन की भौहों में हेलेन की सुन्दरता देखता है।' हब्शी एक आभास है और उस आभास पर मनुष्य अपना प्रेम आरोपित करता है। जिस प्रकार सीपी अपने भीतर क्षोभक वस्तुओं को पाकर, उनको सुन्दर मोतियों में परिवर्तित कर देनेवाले पदार्थ से आवेष्टित कर देती है, उसी प्रकार मनुष्य अपना प्रेम आरोपित करता है, और वह सदा अपने उच्चतम आदर्श से ही प्रेम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता है, और उच्चतम आदर्श सदा निःस्वार्थ होता है, इसलिए मनुष्य प्रेम को प्रेम करता है। ईश्वर प्रेम है, और हम ईश्वर से प्रेम करते हैं—अर्थात् प्रेम से प्रेम करते हैं। हम केवल प्रेम को देखते हैं। प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता। मक्खन खाता हुआ गूँगा मनुष्य तुमको यह नहीं बता सकता कि मक्खन कैसा लगता है। मक्खन मक्खन है, और उसके गुण उन लोगों को नहीं बताये जा सकते, जिन्होंने उसको कभी चखा न हो। प्रेम के लिए प्रेम का वर्णन उन लोगों से नहीं किया जा सकता, जिन्होंने इसका अनुभव न किया हो।

एक त्रिकोण को प्रेम का प्रतीक बनाया जा सकता है। पहला कोण है, प्रेम कभी माँगता नहीं; कभी किसी वस्तु की याचना नहीं करता; दूसरा, प्रेम में भय नहीं होता; तीसरा और शीर्षस्थ है, प्रेम के लिए प्रेम। प्रेम की शक्ति के द्वारा इन्द्रियाँ परिष्कृत और ऊर्ध्वमुखी हो जाती हैं। मानव-सम्बन्धों में पूर्ण प्रेम बहुत ही दुर्लभ होता है, क्योंकि मानव-प्रेम लगभग सदा अन्योन्याश्रित और पारस्परिक होता है। पर ईश्वर का प्रेम एक स्थायी धारा है, उसे कोई हानि अथवा बाधा नहीं पहुँचा सकता। जब मनुष्य ईश्वर को याचक की भाँति नहीं, अपने उच्चतम आदर्श के रूप में, निःस्वार्थ भाव से, प्रेम करता है, तो प्रेम अपने उच्चतम विकास पर पहुँच जाता है और वह विश्व में एक महान् शक्ति बन जाता है। इस स्थिति तक पहुँचने में बहुत समय लगता है और हमें आरम्भ वहाँ से करना चाहिए, जो हमारी प्रकृति के निकटतम हो, कुछ सेवा के लिए उत्पन्न होते हैं, कुछ प्रेम में माता बनने के लिए। जो हो, फल ईश्वर के अधीन है। हमें प्रकृति से लाभ उठाना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार का उपकार

हमसे पूछा जाता है : 'आपके धर्म से समाज का क्या लाभ है ?' समाज को सत्य की कसौटी बनाया गया है। यह तो बड़ी तर्कहीनता है। समाज केवल विकास की एक अवस्था है, जिसमें होकर हम गुजर रहे हैं। इस प्रकार तो हम एक वैज्ञानिक आविष्कार के लाभ अथवा उसकी उपयोगिता को एक शिशु के लिए उसकी उपयोगिता से जाँचेंगे। यह अत्यन्त असंगत है। यदि सामाजिक अवस्था स्थायी होती, तो वह शिशु के सदा शिशु ही बने रहने जैसी बात होती। पूर्ण मनुष्य-शिशु नहीं हो सकता; यह शब्द—'मनुष्य-शिशु'—ही विरोधाभासी है—इसलिए कोई समाज पूर्ण नहीं हो सकता। मनुष्य को ऐसी आरम्भिक अवस्थाओं से आगे बढ़ना होगा और वह बढ़ेगा। समाज एक अवस्था तक अच्छा है, पर वह हमारा आदर्श नहीं बन सकता; वह निरन्तर परिवर्तनशील है। आधुनिक वणिक् सभ्यता को, अपने समस्त दम्भों और आडम्बरों के साथ, जो एक प्रकार का 'लार्ड मेयर का तमाशा' है, मरना होगा। संसार को जो चाहिए, वह है व्यक्तियों के माध्यम से विचार की शक्ति। मेरे गुरुदेव कहा करते थे, "तुम स्वयं अपने कमल के फूल को खिलने में सहायता क्यों नहीं देते ? भौंरे तब अपने आप आयेंगे।" संसार को ऐसे लोग चाहिए, जो ईश्वर के प्रेम में मतवाले हों। तुम पहले अपने में विश्वास करो, तब तुम ईश्वर में विश्वास करोगे। संसार छः श्रद्धालु मनुष्यों का इतिहास, छः गम्भीर शुद्ध चरित्रवान मनुष्यों का इतिहास है। हमें तीन वस्तुओं की आवश्यकता है : अनुभव करने के लिए हृदय की, कल्पना करने के लिए मस्तिष्क की, और काम करने के लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाथ की। पहले हमें संसार से बाहर जाना चाहिए और अपने लिए समुचित उपकरण तैयार करने चाहिए। अपने को एक डाइनेमो बनाओ। पहले संसार के लिए महसूस करो। ऐसे समय में जब संसार में सब मनुष्य काम करने को तैयार हैं, तो भावना-शील व्यक्ति कहाँ है? वह अनुभूति कहाँ है, जिसने इग्नेशियस लॉयला को उत्पन्न किया था? अपने प्रेम और नम्रता की परीक्षा करो। ईर्ष्यालु व्यक्ति नम्र और प्रेममय नहीं होता। ईर्ष्या एक भयंकर, भयावह पाप है; यह मनुष्य में अत्यन्त रहस्य-मय रीति से प्रवेश कर जाती है। अपने से पूछो, तुम्हारा मन घृणा अथवा ईर्ष्या की प्रतिक्रिया करता है या नहीं? संसार में जो टनों घृणा और क्रोध उँड़ेला जा रहा है, उससे भले कार्यों का निरन्तर निराकरण हो रहा है। यदि तुम पवित्र हो, यदि तुम सशक्त हो, तो तुम, एक व्यक्ति, समस्त संसार के बराबर हो।

शुभ कार्य करने का दूसरा माध्यम—मस्तिष्क केवल सूखा सहारा रेगिस्तान मात्र है; क्योंकि वह अकेला उस समय तक कुछ नहीं कर सकता, जब तक कि उसके पीछे अनुभूति न हो। उस प्रेम को, जो कभी असफल नहीं रहा, साथ लो, और तब मस्तिष्क कल्पना करेगा और हाथ भलाई करेगा। ऋषियों ने ईश्वर के स्वप्न देखे हैं और उसके दर्शन किये हैं। 'जिनका हृदय शुद्ध है, वे ईश्वर का दर्शन पायेंगे।' सब महान् पुरुष ईश्वर दर्शन कर चुकने का दावा करते हैं। हजारों वर्ष पहले यह दिव्य दर्शन उपलब्ध हुआ है और, परे जो एकता है, वह स्वीकृत की जा चुकी है, और अब हमें जो करना है, वह केवल इन महत्त्व-पूर्ण रूप-रेखाओं को भरना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय, ... वाराणसी-5

मातृ-पूजा

(न्यूयार्क में स्वामी विवेकानन्द के एक कक्षालय के खण्डित नोटों के आधार पर)

ऐंद्रिक प्रत्यक्ष के दो युग्म तथ्य, जिनसे हम कभी छुटकारा नहीं पा सकते, सुख और दुःख हैं—जो वस्तुएँ हमें कष्ट देती हैं, वे सुख भी लाती हैं। हमारा संसार इन दोनों से बना है। हम उनसे छुटकारा नहीं पा सकते; जीवन की प्रत्येक धड़कन के साथ वे विद्यमान हैं। संसार इन दो विरोधियों के समन्वय के प्रयत्न में लगा हुआ है, ऋषि विरोधियों के इस सम्मिलन का समाधान खोज रहे हैं। कष्ट की दाहक ऊष्मा बीच-बीच में विश्रान्ति की झलकों से खण्डित होती रहती है, प्रकाश की चमक थोड़े-थोड़े समय बाद कौंधकर केवल तमिस्रा को अधिक गहन करने के लिए ही अन्धकार को भंग करती है।

बालक जन्मजात आशावादी होते हैं, पर जीवन का शेषांष एक अविच्छिन्न स्वप्नभंग होता है; एक भी आदर्श पूर्णतया प्राप्त नहीं किया जा सकता, एक भी प्यास नहीं बुझायी जा सकती। इस प्रकार वे इस पहेली को हल करने का प्रयत्न करते रहते हैं, और धर्म ने यह काम सँभाल लिया है।

द्वैतवादी धर्मों में, एक ईश्वर होता है और एक शैतान। यह यहूदियों के द्वारा समस्त यूरोप और अमेरिका में फैल गया है। यह हजारों वर्ष पहले की एक कामचलाऊ परिकल्पना थी, पर अब हम जानते हैं कि यह निराधार है। विशुद्ध शुभ अथवा अशुभ जैसी कोई वस्तु नहीं है; जो एक के लिए शुभ है, वही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरे के लिए अशुभ, आज बुरा है, कल भला और इसके विपरीत।...

ईश्वर वास्तव में पहले एक कबीले का देवता था, बाद में वह देवताओं का, ईश्वर बना। प्राचीन मिस्रियों और बेबिलोनियनों ने इस विचार (एक द्वैत ईश्वर और शैतान का) को बहुत व्यावहारिक रूप से कार्यान्वित किया। उनका मोलोक देवताओं का ईश्वर बन गया और बन्दी देवता उसके मन्दिर में सिर झुकाने को बाध्य किये गये।

फिर भी पहेली बनी ही हुई है: इस अशुभ की अध्यक्षता कौन करता है ? बहुत से लोग आशा का कोई आधार न होने पर भी आशा लगाये बैठे हैं कि संसार में सब भला है और यह कि गलती हमारे न समझ पाने की है। हम तिनके का सहारा ले रहे हैं, अपने सिर रेत में धँसा रहे हैं। फिर भी हम सब नैतिकता का पालन करते हैं और नैतिकता का सार है बलिदान—'मैं नहीं, तू'। फिर भी यह विश्व के महान् भले ईश्वर से कैसा भिड़ जाता है ? वह (ईश्वर) अत्यन्त स्वार्थी है, घोर प्रतिहिंसक व्यक्ति—जिसे हम जानते हैं, प्लेग, अकाल, युद्ध भेजनेवाला !

हम सब को इस जीवन में अनुभव प्राप्त करने पड़ते हैं। हम कटु अनुभवों से भागने का प्रयत्न कर सकते हैं, पर देर-सबेर वे हमें पकड़ ही लेते हैं। और मुझे उस मनुष्य पर दया आती है, जो सारी चीज का सामना नहीं कर पाता।

वेदों के मनुदेव का रूपान्तर ईरान में अहिर्मन में हो गया। इस प्रकार इस प्रश्न की पौराणिक व्याख्या समाप्त हो गयी; पर प्रश्न बना रहा, और इसका कोई उत्तर नहीं था, कोई हल नहीं था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर देवी के प्रति प्राचीन वैदिक स्तुति में एक दूसरा भाव था: 'मैं प्रकाश हूँ। मैं सूर्य और चन्द्र की ज्योति हूँ; मैं वायु हूँ, जो सब प्राणियों में जीवन फूँकती है।' यह वह अंकुर है, जो बाद में मातृ-पूजा के रूप में विकसित होता है। मातृ-पूजा का उद्देश्य पिता और माता के बीच भेद करना नहीं है। इसके द्वारा व्यक्त प्रथम विचार, शक्ति का विचार है—मैं वह शक्ति हूँ, जो सब जीवों में है।

शिशु नाड़ीप्रधान मनुष्य है। वह बढ़ता रहता है और अन्त में शक्तिप्रधान मनुष्य हो जाता है। शुभ और अशुभ की धारणा आरम्भ में विभेदीकृत और विकसित नहीं थी। बुद्धिमान चेतना ने शक्ति को ही आदि विचार के रूप में दर्शाया। प्रत्येक पग पर प्रतिरोध और संघर्ष होना नियम है। हम दो के परिणाम हैं—ऊर्जा और प्रतिरोध के, अन्तः और बाह्य बल के। प्रत्येक परमाणु कार्य कर रहा है और मन के प्रत्येक विचार का प्रतिरोध कर रहा है। हम जिन वस्तुओं को देखते और जानते हैं, वह सभी इन दोनों शक्तियों का परिणाम है।

ईश्वर का यह विचार एक नयी वस्तु है। वैदिक स्तुतियों में वरुण और इन्द्र भक्तों पर सर्वोत्तम वरदानों और आशीषों की वर्षा करते हैं—एक बहुत मानवीय कल्पना, स्वयं मनुष्य से भी अधिक मानवीय।

यह एक नया सिद्धान्त है। सब घटनाओं के पीछे एक शक्ति है, शक्ति सर्वत्र शक्ति ही है, चाहे वह अशुभ के रूप में हो, चाहे संसार के त्राता के रूप में। इस प्रकार, यह एक नवीन कल्पना है; पुरानी कल्पना नर-ईश्वर की थी। यहाँ एक सर्वव्यापी शक्ति की कल्पना का प्रथम उदय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जब वह अशुभ का विनाश करना चाहता है, तब मैं रुद्र के धनुष को चढ़ाती हूँ।'

बहुत शीघ्र ही गीता में हम पाते हैं: 'हे अर्जुन, मैं सत् हूँ और मैं असत् हूँ, मैं शुभ हूँ और मैं अशुभ हूँ, मैं सन्तों की शक्ति हूँ, मैं खलों की शक्ति हूँ।' पर शीघ्र ही वक्ता सत्य में जोड़-गाँठ कर देता है और यह विचार सुप्त हो जाता है। मैं तभी तक शुभ की शक्ति हूँ, जब तक वह शुभ करती रहती है।

ईरान के धर्म में शैतान की कल्पना थी; पर भारत में शैतान की धारणा नहीं थी। परवर्ती पुस्तकों ने इस नये विचार को अपनाना आरम्भ किया। अशुभ का अस्तित्व है, और इस तथ्य को मान लेना होगा। विश्व एक तथ्य है; और यदि यह तथ्य है, तो वह शुभ और अशुभ का विशाल संघात है। जो शासन करता है, वह शुभ और अशुभ पर शासन करता है। यदि यह शक्ति हमारे जीवन का कारण है, तो वह हमारी मृत्यु का कारण भी है। हँसी और आँसू बन्धु हैं और इस संसार में हँसी की अपेक्षा आँसू अधिक हैं। फूल किसने बनाये, हिमालय किसने बनाये? एक बहुत अच्छे ईश्वर ने। मेरे पापों और मेरी दुर्बलताओं को किसने बनाया? कर्म ने, शैतान ने, अहं ने। फल हुआ लँगड़ा, एक टाँग का विश्व, और स्वभावतः इस विश्व का ईश्वर भी एक टाँग का ईश्वर है।

शुभ और अशुभ को दो नितान्त पृथक् सत्ताओं के रूप में देखना हमें निर्मम हृदयहीन पशु बनाता है। एक भली नारी वेश्या से बिदक जाती है। क्यों? कुछ बातों में वह तुमसे अनन्त गुना अच्छी हो सकती है। यह दृष्टिकोण संसार में स्थायी ईर्ष्या और घृणा, मनुष्य और मनुष्य के, भले मनुष्य और अपेक्षाकृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कम भले अथवा बुरे मनुष्य के बीच स्थायी व्यवधान उत्पन्न करता है। ऐसा पाशविक दृष्टिकोण केवल बुराई है, स्वयं बुराई से भी अधिक बुरी। शुभ और अशुभ पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं वरन् शुभ का विकास होता है, जो कम शुभ होता है, उसे हम अशुभ कहते हैं।

कुछ सन्त हैं और कुछ पापी। सूर्य भले और बुरे, दोनों पर एक समान चमकता है। क्या वह उनके बीच भेद करता है ?

ईश्वर के पितृत्व का पुरातन विचार सुख की अध्यक्षता करनेवाले ईश्वर की मधुर कल्पना से सम्बद्ध है। हम तथ्यों को अस्वीकार करना चाहते हैं। अशुभ का अस्तित्व नहीं है, वह शून्य है। 'मैं' बुराई है। और 'मैं' का अस्तित्व आवश्यकता से अधिक है। क्या मैं शून्य हूँ ? मैं नित्य अपने को इस रूप में देखने का प्रयास करता हूँ और असफल रहता हूँ।

ये सभी विचार अशुभ से भागने के प्रयत्न हैं। पर हमें इसका सामना करना है। सम्पूर्ण का सामना करो ! क्या मेरे ऊपर किसी का बन्धन है कि मैं केवल सुख और शुभ में ही ईश्वर को अपना आंशिक प्रेम दूँ और दुःख तथा अशुभ में नहीं ?

वह दीपक, जिसकी ज्योति में एक मनुष्य जाली हस्ताक्षर बनाता है और दूसरा अकाल-निवारण के लिए हजार डॉलर का चेक लिखता है, दोनों पर प्रकाश डालता है, वह उनमें भेद नहीं करता। प्रकाश अशुभ को नहीं जानता; तुम और मैं उसे बुरा अथवा भला बनाते हैं।

इस विचार के लिए एक नया नाम चाहिए। इसे माँ कहते हैं, क्योंकि शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से उसका आरम्भ एक नारी कवि से हुआ, जिसे देवी का पद दिया गया था। इसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाद सांख्य आया, और उसके अनुसार सब शक्ति स्त्री है। चुम्बक निश्चेष्ट है और लोहे के कण दौड़ रहे हैं।

भारत में सब स्त्री-प्रकारों में माँ सब से ऊँची है, पत्नी से भी ऊँची। पत्नी और सन्तान मनुष्य को त्याग सकते हैं, पर उसकी माँ कभी नहीं त्यागती। माँ सदा वैसी ही रहती है, अथवा अपने बच्चे को कदाचित् तनिक अधिक प्यार करती है। माँ वह उज्ज्वल प्रेम दर्शाती है, जिसमें सौदा नहीं होता, वह प्रेम जो कभी नहीं मरता। ऐसा प्रेम किसमें हो सकता है? केवल माँ में, पुत्र में नहीं, पुत्री में नहीं, पत्नी में नहीं।

"मैं वह शक्ति हूँ, जो सर्वत्र व्यक्त होती है," माँ कहती है—वह जो इस विश्व को जन्म दे रही है, और जो आगे आने-वाले उसके विनाश को उत्पन्न कर रही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि विनाश सृष्टि का आरम्भ मात्र है। पर्वत की चोटी घाटी का आरम्भ मात्र है।

निर्भीक बनो, तथ्यों का सामना तथ्यों की भाँति करो। अशुभ के भय से विश्व में इधर-उधर न भागो। अशुभ अशुभ है। उससे क्या?

अन्ततः, यह केवल माँ की लीला है। कोई बड़ी गम्भीर बात नहीं है। सर्वशक्तिमान को क्या हिला सकता है? वह क्या है, जिसने माँ को विश्व-निर्माण के लिए प्रेरित किया? उनका कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि लक्ष्य वह होता है, जिसकी अभी प्राप्ति न हुई हो। यह सृष्टि किसलिए है? केवल लीला। हम इसे भूल जाते हैं, और झगड़ने लगते हैं और दुःख भोगते हैं। हम माँ के लीलासखा हैं।

उस कष्ट को देखो, जो माँ शिशु के पालने में उठाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या उसे इसमें आनन्द आता है? निश्चय ही। वह उपवास करती है, प्रार्थना करती है, नजर रखती है। वह इसे सब से अधिक प्रेम करती है। क्यों? इसलिए कि इसमें कोई स्वार्थ नहीं है।

सुख आयेगा——बहुत ठीक: कौन रोकता है? दुःख आयेगा: उसका भी स्वागत है। एक मच्छर एक बैल के सींग पर बैठा था; अचानक उसमें पश्चात्ताप उत्पन्न हुआ और वह बोला, "बैल महोदय, मैं बहुत देर से यहाँ बैठा हुआ हूँ। शायद आपको कष्ट हो रहा है। मुझे खेद है, मैं चला जाऊँगा।" बैल ने उत्तर दिया, "अरे नहीं, बिल्कुल नहीं! अपने पूरे परिवार को ले आओ और मेरे सींग पर निवास करो: तुमसे मुझे क्या कष्ट होगा?"

हम दुःख से यही क्यों नहीं कह सकते? वीर होने का अर्थ है, माँ में विश्वास रखना!

'मैं जीवन हूँ, मैं मृत्यू हूँ!' यह माँ है, जिसकी छाया जीवन और मृत्यु है। सब सुखों का सुख वही है। सब दुःखों में दुःख वही है। यदि जीवन आता है तो वह माँ है, यदि मृत्यु आती है, तो वह माँ है। यदि स्वर्ग आता है, तो वह वही है। यदि नरक आता है, तो वहाँ माँ है; गोता लगाओ। हममें विश्वास नहीं है, हममें यह देखने का धैर्य नहीं है। हम ऐरे-गैरे पर विश्वास कर लेते हैं, पर विश्व में एक ही है, जिस पर हम कभी विश्वास नहीं करते और वह है ईश्वर। जब वह हमारे मन की करता है, तो हम उस पर भरोसा करते हैं। पर समय आयेगा, जब चोट पर चोट खाकर यह स्वयंपर्याप्त मन मर जायगा। हम जो कुछ करते हैं, उसमें अहं का सर्प अपना फन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठाये रहता है। हम प्रसन्न हैं कि मार्ग में इतने अधिक काँटें हैं। वे सर्प के फन में आघात करते हैं।

सब के अन्त में आयेगा : आत्म-समर्पण। तब हम अपने को माँ के प्रति अर्पित कर सकेंगे। यदि दुःख आता है, स्वागत है; यदि सुख आता है, स्वागत है। जब हम प्रेम की इस सीमा तक पहुँच जायँगे, तो सारी टेढ़ी वस्तुएँ सीधी हो जायँगी। ब्राह्मण, चाण्डाल और कुत्ते के लिए एक ही दृष्टि होगी। जब तक हम विश्व को एक दृष्टि से, निष्पक्ष, अमर प्रेम नहीं करते, हम बार-बार चूकते रहते हैं। पर तब, सब अन्तर्हित हो चुकेगा और हमें सब में उसी अनन्त अनादि माँ के दर्शन होंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तकालय, ... वाराणसी

मन्त्र और मन्त्र-चैतन्य

मन्त्रशास्त्रियों का विश्वास है कि कुछ शब्द ऐसे हैं, जो गुरु और शिष्य-परम्परा से चले आये हैं, उनका जप मात्र करने से ही उन्हें किसी प्रकार के साक्षात्कार की उपलब्धि हो जायगी। मन्त्र-चैतन्य शब्द के दो भिन्न अर्थ हैं। कुछ लोगों के मतानुसार, यदि तुम किसी मन्त्र के जप का अभ्यास करते हो, तो तुम्हें उस इष्ट देवता के दर्शन हो जायँगे, जो उस मन्त्र का साध्य अथवा देवता है। पर दूसरों के अनुसार, इस शब्द का अर्थ है कि यदि तुम अयोग्य गुरु से प्राप्त किसी मन्त्र का जप करो, तो तुम्हारा जप उस समय तक सिद्ध न होगा, जब तक तुम विशेष अनुष्ठान करके उन मन्त्रों को चेतन अर्थात् जीवन्त न कर लो। विभिन्न मन्त्र जव इस प्रकार 'जीवन्त' होते हैं, उनमें विभिन्न लक्षण पाये जाते हैं, पर सामान्य लक्षण यह है कि मनुष्य उन्हें बिना किसी प्रकार का कष्ट अनुभव किये बहुत देर तक जप सकता है और यह कि उसका मन बहुत शीघ्र एकाग्र हो जाता है। यह तान्त्रिक मन्त्रों के बारे में है।

वेदों के समय से, मन्त्रों के विषय में दो भिन्न मत रहे हैं। यास्क और दूसरे लोग कहते हैं कि वेदों का अर्थ है, पर पुरातन मन्त्रशास्त्री कहते हैं कि उनका कोई अर्थ नहीं है; और यह कि उनका उपयोग इसी में है कि कुछ यज्ञों में उनका पाठ किया जाय। तब वे निश्चय ही फल के रूप में पार्थिव सुख अथवा आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान उपनिषदों के वचनों से प्रसूत होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईश्वरत्व की धारणा

मनुष्य की आन्तरिक अभीप्सा उस व्यक्ति को पाने के लिए होती है, जो प्रकृति के नियमों से परे हो। वेदान्ती ऐसे नित्य ईश्वर में विश्वास करता है, जब कि बौद्ध और सांख्यवादी केवल जन्येश्वर अर्थात् वह ईश्वर जो, पहले मनुष्य था और फिर आध्यात्मिक साधना के द्वारा ईश्वर बना, में विश्वास करते हैं। पुराण इन दो मतवादों का समन्वय अवतारवाद द्वारा करते हैं। उनका कहना है कि जन्येश्वर नित्य ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, उसने माया से जन्येश्वर का रूप धारण कर लिया है। सांख्यवादियों का नित्य ईश्वर के प्रति यह तर्क कि 'एक जीवन्मुक्त आत्मा विश्व की रचना कैसे कर सकती है', एक मिथ्या आधार पर आश्रित है, क्योंकि तुम एक मुक्तात्मा को कोई आदेश नहीं दे सकते। वह मुक्त है अर्थात् वह जो चाहे सो कर सकता है। वेदान्त के अनुसार जन्येश्वर विश्व की रचना, पालन अथवा संहार नहीं कर सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिष्यत्व

(सैन फ्रान्सिस्को में २९ मार्च, १९०० को दिया गया भाषण)

मेरा विषय है 'शिष्यत्व'। मैं नहीं जानता कि मैं जो कहूँगा, वह तुमको कैसा लगेगा। इसको स्वीकार करना तुम्हारे लिए कुछ कठिन होगा--इस देश में गुरुओं और शिष्यों के जो आदर्श हैं, वे हमारे देश के ऐसे आदर्शों से बहुत भिन्न हैं। मुझे भारत की एक पुरानी लोकोक्ति याद आ रही है: 'गुरु तो लाखों मिलते हैं, पर शिष्य एक भी पाना कठिन है।' बात सही मालूम होती है। आध्यात्मिकता की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण वस्तु शिष्य की मनोवृत्ति है; जब अधिकारी योग्य होता है, तो दिव्य प्रकाश का अनायास आविर्भाव होता है।

सत्य को प्राप्त करने के लिए शिष्य के लिए क्या आवश्यक है? महान् ऋषियों ने कहा है कि सत्य प्राप्त करने में निमिष मात्र लगता है--प्रश्न केवल जान लेने भर का है। स्वप्न टूट जाता है, उसमें देर कितनी लगती है? एक सेकण्ड में स्वप्न का तिरोभाव हो जाता है। जब भ्रम का नाश होता है, तो उसमें कितना समय लगता है? पलक झपकने में जितनी देर लगती है, उतनी। जब मैं सत्य को जानता हूँ. तो इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता कि असत्य गायब हो जाता है। मैंने रस्सी को साँप समझा था और अब मैं जानता हूँ कि वह रस्सी है। प्रश्न केवल आधे सेकण्ड का है। और सब कुछ हो जाता है। तू वह है। तू वास्तविकता है। इसे जानने में कितना समय लगता है? यदि हम ईश्वर हैं और सदा से वही हैं, तो इसे न जानना अत्यन्त आश्चर्य की बात है। एकमात्र स्वाभाविकता यह है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम इसे जानें। इसका पता लगाने में युग नहीं लगने चाहिए कि हम सदा क्या रहे हैं और अब क्या हैं ?

फिर भी इस स्वतः प्रत्यक्ष सत्य को प्राप्त करना कठिन जान पड़ता है। इसकी एक धूमिल झाँकी मिलना आरम्भ होने के पूर्व युग पर युग बीत जाते हैं। ईश्वर जीवन है; ईश्वर सत्य है। हम इस विषय पर लिखते हैं; हम अपने अन्तःकरण में अनुभव करते हैं कि यह सत्य है, कि आज यहाँ, अतीत और भविष्य में ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुएँ मिथ्या हैं। फिर भी हममें से अधिकांश लोग जीवन भर एक से बने रहते हैं। हम असत्य से चिपटे रहते हैं और सत्य की ओर अपनी पीठ फेरते हैं। हम सत्य को प्राप्त करना नहीं चाहते। हम नहीं चाहते कि कोई हमारे स्वप्न को तोड़े। तो तुम देखते हो कि गुरुओं की आवश्यकता नहीं है। सीखना कौन चाहता है? पर यदि कोई सत्य की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है और भ्रम को जीतना चाहता है, यदि वह सत्य को किसी गुरु से प्राप्त करना चाहता है, तो उसे सच्चा शिष्य होना होगा।

शिष्य होना आसान नहीं है। बड़ी तैयारियों की आवश्यकता है; बहुत सी शर्तें पूरी करनी होती हैं। वेदान्तियों ने मुख्य शर्तें चार रखी हैं।

पहली शर्त यह है कि जो शिष्य सत्य को जानना चाहता है, वह इस लोक अथवा परलोक में कुछ प्राप्त करने की सभी इच्छाओं को त्याग दे।

जो हम देखते हैं, वह सत्य नहीं है। जो हम देखते हैं, वह उस समय तक सत्य नहीं है, जब तक हमारे मन में इच्छाएँ घुस आती रहती हैं। ईश्वर सत्य है, और यह संसार सत्य नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब तक हृदय में संसार के लिए तनिक भी इच्छा है, सत्य का उदय नहीं होगा। मेरे चारों ओर का संसार खँडहर हो जाय, मुझे चिन्ता नहीं। आगामी जीवन में भी ऐसा ही हो; मुझे स्वर्ग जाने की चिन्ता नहीं है। स्वर्ग क्या है? इस पृथ्वी का ही एक प्रस्तार है। यदि स्वर्ग न होता, पृथ्वी पर के इस मूर्खता-पूर्ण जीवन का प्रस्तार न होता, तो हम आज की अपेक्षा अच्छी स्थिति में होते और आज जो मूर्खतापूर्ण स्वप्न हम देख रहे हैं, वे जल्दी भंग हो जाते। स्वर्ग जाकर हम केवल इन दुःखमय भ्रमों की अवधि ही बढ़ाते हैं।

स्वर्ग में तुमको क्या मिलता है? तुम देवता हो जाते हो, अमृत पीते हो और तुमको गठिया हो जाती है। वहाँ पृथ्वी की अपेक्षा दुःख कम है, पर सत्य भी कम है। बहुत धनी लोग सत्य को गरीबों की अपेक्षा कम समझ पाते हैं। 'सुई के छेद से ऊँट का निकल जाना सम्भव हो सकता है, पर ईश्वर के राज्य में धनी का प्रवेश सम्भव नहीं।' धनी मनुष्य के पास अपनी सम्पत्ति और शक्ति, अपनी सुविधा और विलास के अतिरिक्त और किसी वस्तु के विषय में सोचने का समय ही नहीं होता। बहुत कम धनी धार्मिक बन पाते हैं। क्यों? इसलिए कि वे सोचते हैं कि यदि वे धार्मिक हो जायँगे, तो उन्हें जीवन का आनन्द नहीं मिलेगा। इसी प्रकार स्वर्ग में आध्यात्मिक हो सकने की सम्भावना बहुत कम है, वहाँ अत्यधिक सुविधा और सुख हैं— स्वर्गनिवासी अपना सुख छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

वे कहते हैं कि स्वर्ग में कभी रुदन नहीं होगा। जो मनुष्य कभी रोता नहीं, मैं उस पर विश्वास नहीं करता; उसके हृदय के स्थान पर कठोर चट्टान का एक बड़ा टुकड़ा होता है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पष्ट है कि स्वर्ग के लोगों में बहुत सहानुभूति नहीं होती। वहाँ न ज़ाने कितने लोग हैं और हम दुःखी इस विकट स्थान में कष्ट भोग रहे हैं। वे हमें इस सब में से बाहर निकाल सकते हैं, पर निकालते नहीं। वे रोते नहीं। वहाँ शोक अथवा दुःख नहीं है; इसलिए वे किसी के दुःख की चिन्ता नहीं करते। वे अपना अमृत पीते रहते हैं, नृत्य चलते रहते हैं; सुन्दर पत्नियाँ और शेष सब।

शिष्य को इन बातों से परे जाकर कहना चाहिए, "मैं इस जीवन में किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता और न किसी स्वर्ग की, वे जितने भी हों—मैं उनमें से किसी में नहीं जाना चाहता। मैं किसी रूप में भी इन्द्रिय-जीवन को नहीं चाहता—अपने को शरीर नहीं समझना चाहता। जैसा मैं अभी अनुभव करता हूँ, मैं यह शरीर—मांस का यह बृहत् पिण्ड हूँ—यह मैं अनुभव करता हूँ कि मैं हूँ। मैं इसमें विश्वास करने को तैयार नहीं हूँ।"

यह संसार और ये स्वर्ग, ये सब इन्द्रियों से बँधे हैं। यदि तुम्हारे इन्द्रियाँ नहीं होतीं, तो तुम संसार की चिन्ता नहीं करते। स्वर्ग भी संसार है। पृथ्वी, स्वर्ग, और वह जो सब बीच में है, उसका केवल एक नाम है—पृथ्वी।

इसलिए जो शिष्य अतीत और वर्तमान को जानते हुए और भविष्य की सोचता है, जानता है कि समृद्धि क्या है, सुख का क्या अर्थ है, वह इन सब को छोड़ देता है, सत्य और केवल सत्य को जानना चाहता है। यह पहली शर्त है।

दूसरी शर्त यह है कि शिष्य को अपनी अन्तरिन्द्रियों और बहिरिन्द्रियों को नियन्त्रित करने में समर्थ होना चाहिए और कुछ अन्य आध्यात्मिक गुणों में दृढ़ होना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाह्य इन्द्रियाँ शरीर के विभिन्न भागों में स्थित दृश्य अंग हैं; अन्तरिन्द्रियाँ अस्पृश्य हैं। हमारे नेत्र, कान, नाक आदि बाह्य हैं; और उनसे संगत अन्तरिन्द्रियाँ हैं। हम निरन्तर इन्द्रियों के इन दोनों वर्गों के संकेतों पर नाचते हैं। इन्द्रियों के समानुरूपी इन्द्रिय-विषय हैं। यदि कोई इन्द्रिय-विषय निकट होते हैं, तो इन्द्रियाँ हमें उनका अनुभव करने को विवश करती हैं; हमारी कोई इच्छा अथवा स्वतन्त्रता नहीं होती। यह एक बड़ी नाक है। वहाँ तनिक भी सुगन्ध है, मुझे वह सूँघनी पड़ती है। यदि गन्ध बुरी होती, तो मैं अपने से कहता, "इसे मत सूँघो।" पर प्रकृति कहती है "सूँघ", और मैं सूँघता हूँ। तनिक सोचो तो, हम क्या हो गये हैं! हमने अपने को बाँध लिया है। मेरी आँखें हैं। कुछ भी हो रहा हो, अच्छा या बुरा, मुझे देखना होगा। सुनने के साथ भी यही बात है। यदि कोई मुझसे बुरी तरह बोलता है, तो वह मुझे सुनना होगा। मेरे श्रवणेन्द्रिय मुझे यह करने को बाध्य करती है, और मुझे कितना दुःख अनुभव होता है! निन्दा अथवा प्रशंसा—मनुष्य को सुननी पड़ेगी। मैंने बहुत से बहरे मनुष्य देखे हैं, जो आम तौर पर नहीं सुन पाते, पर यदि बात उनके बारे में होती है, तो वह सदा सुन लेते हैं!

ये सब इन्द्रियाँ, अन्तः और बाह्य, शिष्य के नियन्त्रण में होनी चाहिए। कठिन अभ्यास के द्वारा उसे ऐसी अवस्था में पहुँच जाना चाहिए, जहाँ वह अपने मन द्वारा इन्द्रियों का, प्रकृति के आदेशों का, सफल विरोध कर सके। वह अपने मन से यह कह सके: "तुम मेरे हो, मैं तुम्हें कुछ न देखने की अथवा न सुनने की आज्ञा देता हूँ", और मन न कुछ देखे, न कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुने—मन पर किसी रूप अथवा ध्वनि की प्रतिक्रिया न हो। इस अवस्था में मन इन्द्रियों के अधिकार से मुक्त हो चुका होता है, उनसे अलग हो चुका होता है। अब वह इन्द्रियों और शरीर से आबद्ध नहीं रहता। बाह्य वस्तुएँ अब मन को आज्ञा नहीं दे सकतीं; मन अपने को उनसे जोड़ना स्वीकार नहीं करता। वहाँ सुन्दर गन्ध है। शिष्य मन से कहता है, "मत सूँघो", और मन गन्ध का अनुभव नहीं करता। जब तुम ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हो, तभी तुम शिष्य बनना आरम्भ करते हो। इसीलिए जब प्रत्येक मनुष्य कहता है, "मैं सत्य को जानता हूँ," तो मैं कहता हूँ, "यदि तुम सत्य को जानते हो, तो तुममें आत्मनियन्त्रण होना चाहिए; और यदि तुममें आत्मनियन्त्रण है, तो उसे इन इन्द्रियों के नियन्त्रण के रूप में प्रकट करो।"

इसके बाद, मन को शान्त करना चाहिए। वह इधर-उधर भटकता रहता है। जब मैं ध्यान के लिए बैठता हूँ, तो मन में संसार के सब बुरे से बुरे विषय उभर आते हैं। मतली आने लगती है। मन ऐसे विचारों को क्यों सोचता है, जिन्हें मैं नहीं चाहता कि वह सोचे? मैं मानो मन का दास हूँ। जब तक मन चंचल है और वश से बाहर है, तब तक कोई आध्यात्मिक ज्ञान सम्भव नहीं है। शिष्य को मनोनिग्रह सीखना है। हाँ, मन का कार्य सोचना है। पर यदि शिष्य नहीं चाहता, तो उसे सोचना नहीं चाहिए; जब वह आज्ञा दे, तो सोचना बन्द कर देना चाहिए। शिष्यता का अधिकारी बनने के लिए मन की यह स्थिति बहुत आवश्यक है।

और, शिष्य की सहनशक्ति भी महान् होनी चाहिए। जीवन सुविधापूर्ण मालूम होता है; और पाते हैं कि जब सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बातें ठीक-ठीक चलती रहती हैं, तो मन ठीक प्रकार से व्यवहार करता है। पर जब कोई बात बिगड़ जाती है, तो तुम्हारा मन सन्तुलन खो देता है। यह ठीक नहीं है। सारी बुराई और दुःख को कष्ट की एक आह के बिना, दुःख के, विरोध के, निराकरण के और प्रतिशोध के एक विचार के बिना सहन करो। यह सच्ची सहनशक्ति है; और यह तुमको प्राप्त करनी चाहिए।

शुभ अशुभ संसार में सदा रहे हैं। बहुत से भूल जाते हैं कि बुराई भी है—कम से कम वे भूलने का यत्न करते हैं—और जब अशुभ से पाला पड़ता है, तो वे उससे अभिभूत हो जाते हैं और कटु हो उठते हैं। और कुछ हैं, जो कहते हैं कि अशुभ बिल्कुल नहीं है और प्रत्येक वस्तु को शुभ समझते हैं। यह भी एक दुर्बलता है; यह भी अशुभ के भय से उत्पन्न होती है। यदि कोई वस्तु बुरी गन्ध देती है, तो उस पर गुलाब जल क्यों छिड़को और उसे सुगन्धित क्यों कहो ? हाँ, संसार में शुभ है और अशुभ है—ईश्वर ने संसार में अशुभ बनाया है। पर तुमको उस पर सफेदी नहीं पोतनी है। अशुभ क्यों है, इससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं। कृपया विश्वास रखो और शान्त रहो।

जब मेरे गुरुदेव श्रीरामकृष्ण बीमार पड़े, तो एक ब्राह्मण ने सुझाया कि वे रोग से मुक्ति पाने के लिए अपनी महान् मानसिक शक्ति का उपयोग करें; उसने कहा कि यदि गुरु अपने मन को अपने शरीर के रोगी भाग पर केन्द्रित करें, तो वह अच्छा हो जायगा। श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "क्या ! जो मन मैंने ईश्वर को दे दिया है, उसे इस क्षुद्र शरीर के लिए नीचे उतारूँ !" उन्होंने शरीर और बीमारी के विषय में सोचना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्वीकार कर दिया। उनका मन निरन्तर ईश्वर का अनुभव करता था; वह पूर्णरूपेण उसके प्रति अर्पित था। वेह किसी दूसरे कार्य के लिए उसका उपयोग करने को तैयार नहीं थे।

स्वास्थ्य, सम्पत्ति, दीर्घायु और ऐसी ही अन्य वस्तुओं--तथाकथित शुभ वस्तुओं--के प्रति लालसा भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनकी प्राप्ति के लिए उनमें मन लगाने से केवल प्रवंचना को बल मिलता है। इस जीवन में हमारे ये स्वप्न भ्रम हैं, और हम आगामी जीवन में, स्वर्ग में उन्हें और भी अधिक परिमाण में चाहते हैं। अधिक, और अधिक भ्रम। अशुभ का विरोध मत करो। उसका सामना करो। तुम अशुभ से ऊँचे हो।

संसार में यह दुःख है--यह किसी न किसी को सहना है। तुम किसी के लिए अशुभ की सृष्टि किये बिना कोई कार्य नहीं कर सकते। और जब तुम सांसारिक शुभ चाहते हो, तो तुम केवल एक अशुभ से बचते हो, जो किसी दूसरे को भोगना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य इसे दूसरे पर टालने का प्रयत्न कर रहा है। शिष्य कहता है, "संसार के सब दुःख मेरे पास आयें; मैं उन सब को सहन करूँगा। दूसरों को मुक्त रहने दो।"

क्रूस पर जो व्यक्ति है, उसका स्मरण करो, वह विजय के लिए फरिश्तों के दल ला सकता था; पर उसने विरोध नहीं किया। वह उनके लिए दुःखी हुआ, जिन्होंने उसे सूली दी। उसने प्रत्येक अपमान और कष्ट को सहा। उसने सब का भार अपने ऊपर लिया। 'तुम सब, जो थक रहे हो और बोझ से लदे हुए हो, मेरे पास आओ, और मैं तुम्हें विश्राम दूँगा।' ऐसी होती है सच्ची सहनशीलता। वह इस जीवन से कितने ऊँचे थे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतने अधिक ऊँचे कि हम उसे समझ नहीं सकते, हम दास ! कोई मनुष्य ज्यों ही मेरे गाल पर थप्पड़ मारता है, त्यों ही मेरा हाथ तड़ाक से जवाब देता है। मैं उस महिमामय की महानता और पवित्रता को कैसे समझ सकता हूँ ? मैं उसकी गरिमा को कैसे जान सकता हूँ ?

पर मैं आदर्श को नीचे नहीं उतारूँगा। मैं अनुभव करता हूँ कि मैं शरीर हूँ, कि मैं अशुभ का प्रतिरोधी हूँ। यदि मेरे सिर में दर्द होता है, तो मैं उसे अच्छा करने के लिए संसार भर में फिरता हूँ; मैं औषधि की दो हजार बोतलें पीता हूँ। मैं उन अनूठे मनों को कैसे समझ सकता हूँ ? मैं आदर्श को देख पाता हूँ, पर आदर्श में से कितने अंश को ? इस शारीरिक चेतना में से, इस क्षुद्र अहं में से, इसके आनन्द और कष्टों में से, इसकी असुविधाओं और सुविधाओं में से कुछ भी तो उस वातावरण में नहीं पहुँच सकता। केवल आत्मा का ही चिन्तन कर और सदा मन को पार्थिवता से अलग रखकर ही, मैं उस आदर्श की झाँकी प्राप्त कर सकता हूँ। उस आदर्श में ऐन्द्रिक संसार के पार्थिव विचारों और रूपों को कोई स्थान नहीं है। उन्हें परे हटाओ और मन को अध्यात्म में लगाओ। अपने जीवन और मृत्यु को, कष्टों और आनन्दों को, नाम और यश को भूल जाओ और अनुभव करो कि तुम न शरीर हो, न मन, वरन् शुद्ध आत्मा हो।

जब मैं 'मैं' कहता हूँ, तो मेरा तात्पर्य इस जीवात्मा से है। अपने नेत्र मूँदो और देखो कि जब तुम अपने 'मैं' पर विचार करते हो, तो तुम्हारे सामने कौन सा चित्र आता है। क्या तुम्हारे सामने आनेवाला चित्र तुम्हारे शरीर का है अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे मानसिक स्वरूप का ? यदि ऐसा है, तो तुमने अपने सच्चे 'मैं' की अनुभूति नहीं प्राप्त की है। पर वह समय आयेगा, जब तुम ज्यों ही 'मैं' कहोगे, तो तुम अपने सामने ब्रह्माण्ड को, अनन्त सत्ता को देखोगे। तब तुमको अपनी सच्ची आत्मा की अनुभूति हो चुकेगी और तुमको ज्ञान हो जायगा कि तुम अनन्त हो। सत्य यह है : तुम चेतन तत्त्व हो, तुम पार्थिव नहीं हो। एक वस्तु है भ्रम—इसमें एक वस्तु दूसरी जान पड़ती है। पदार्थ को चेतन तत्त्व और शरीर को आत्मा समझ लिया जाता है। यह बहुत बड़ा भ्रम है। इसे नष्ट होना चाहिए।

दूसरा लक्षण यह है कि शिष्य को अपने गुरु (या शिक्षक) में विश्वास होना चाहिए। पश्चिम में शिक्षक केवल बौद्धिक ज्ञान देता है और कुछ नहीं। गुरु के साथ जो सम्बन्ध है, वह जीवन में महानतम है। जीवन में मेरा प्रियतम और निकटतम सम्बन्धी मेरा गुरु है; उसके बाद मेरी माता; फिर मेरे पिता। मेरा प्रथम आदर गुरु के लिए है। यदि मेरे पिता कहें, "यह करो", और मेरे गुरु कहें, "इसे मत करो", तो मैं वह नहीं करूँगा। गुरु मेरी जीवात्मा को मुक्त करते हैं। पिता और माता मुझे यह शरीर देते हैं, पर गुरु मुझे आत्मा में नया जन्म देते हैं।

हमारे कुछ विचित्र विश्वास होते हैं। उनमें से एक यह है कि कुछ अपवादस्वरूप आत्माएँ, पहले से ही मुक्त हैं, और जो संसार की भलाई के लिए, संसार को सहायता देने के लिए यहाँ जन्म लेती हैं। वे पहले से मुक्त होती हैं; उन्हें अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं होती, वे दूसरों की सहायता करना चाहती हैं। उन्हें कोई बात सिखाने की आवश्यकता नहीं होती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

वे अपने बचपन से ही सब कुछ जानती हैं; वे जब छः महीने की शिशु होती हैं, तभी उच्चतम सत्य को वाणी से प्रकट कर सकती हैं।

मानव जाति की आध्यात्मिक प्रगति इन मुक्त आत्माओं पर निर्भर है। वे उन प्रथम दीपों के समान हैं, जिनसे अन्य दीप जलाये जाते हैं। यह सही है कि प्रकाश सब में है, पर अधिकतर लोगों में वह छिपा हुआ है। महात्मा आरम्भ से ही देदीप्यमान ज्योति होते हैं। उनके सम्पर्क में आनेवाले मानो उनसे अपने दीप जला लेते हैं। इससे प्रथम दीप की कोई हानि नहीं होती; फिर भी वह अपना प्रकाश दूसरे दीपों को पहुँचाता है। करोड़ों दीप जल जाते हैं; पर प्रथम दीप अमन्द ज्योति से जगमगाता रहता है। प्रथम दीप गुरु है और जो दीप उससे जलाया जाता है, वह शिष्य है। दूसरा, अपनी बारी आने पर, गुरु बनता है और यह क्रम चलता जाता है। वे महान् आत्माएँ, जिन्हें तुम ईश्वर का अवतार कहते हो, महा बलशाली आध्यात्मिक दिग्गज होते हैं। वे आते हैं और अपनी शक्ति को अपने निकटतम शिष्यों को और उनके द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी शिष्यों को पहुँचाकर एक अति विशाल आध्यात्मिक प्रवाह को जन्म देते हैं।

ईसाई धर्मसंघ में एक बिशप हाथ फेरकर उस शक्ति को संप्रेषित करने का दावा करता है, जिसे समझा जाता है कि, उसने पहले के बिशपों से प्राप्त किया है। बिशप कहता है कि ईसा मसीह ने अपनी शक्ति अपने निकटतम शिष्यों को संप्रेषित की और उन्होंने दूसरों को। और इस प्रकार ईसा की शक्ति उस तक पहुँची है। हमारा मत है कि हममें से प्रत्येक के पास, केवल बिशपों के पास ही नहीं, ऐसी शक्ति होनी चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका कोई कारण नहीं है कि तुममें से प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिकता की इस शक्तिशाली धारा का वाहक न हो सके। पर पहले तुमको एक गुरु, एक सच्चा गुरु, खोजना चाहिए, और तुमको यह याद रखना चाहिए कि वह केवल मामूली मनुष्य नहीं होता। तुमको शरीरधारी गुरु मिल सकता है, पर वास्तविक गुरु शरीर में नहीं होता; वह भौतिक मनुष्य नहीं होता—वह, वह नहीं होता, जो तुम्हारी आँखों को दिखायी देता है। यह हो सकता है कि गुरु तुम्हारे पास मनुष्य के रूप में आये और तुम उससे शक्ति प्राप्त करो, कभी-कभी वह स्वप्न में आयेगा और संसार को कुछ दे जायगा। गुरु की शक्ति हम तक अनेक प्रकार से आ सकती है। पर हम साधारण नश्वर प्राणियों के लिए गुरु को ही आना चाहिए और उसके आते तक हमारी तैयारी चलती रहनी चाहिए।

हम भाषण सुनते हैं और पुस्तकें पढ़ते हैं, परमात्मा और जीवात्मा, धर्म और मुक्ति के बारे में विवाद और तर्क करते हैं। यह आध्यात्मिकता नहीं है, क्योंकि आध्यात्मिकता पुस्तकों में, अथवा सिद्धान्तों में अथवा दर्शनों में निवास नहीं करती। यह विद्वत्ता और तर्क में नहीं, वरन् वास्तविक अन्त:विकास में होती है। तोते भी बातों को याद कर सकते हैं और उन्हें दोहरा सकते हैं। यदि तुम विद्वान् हो जाते हो, तो उससे क्या? गदहे पूरा पुस्तकालय ढोते फिर सकते हैं। इसलिए जब वास्तविक प्रकाश आयेगा, तो पुस्तकों की यह विद्वत्ता—किताबी विद्वत्ता नहीं रहेगी। वह मनुष्य, जो अपना नाम भी नहीं लिख सकता, पूर्णतया धार्मिक हो सकता है; और वह मनुष्य, जिसके मस्तिष्क में संसार के सब पुस्तकालय भरे हों, वैसा होने में असफल रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता है। विद्वत्ता आध्यात्मिक प्रगति की शर्त नहीं है। गुरु का स्पर्श, आध्यात्मिक शक्ति का संचरण, तुम्हारे हृदय में जान फूंक देगा। तब विकास आरम्भ होगा। सच्ची अग्नि-दीक्षा यही है। अब रुकना नहीं है। तुम आगे, और आगे बढ़ते जाते हो।

कुछ वर्ष हुए, तुम्हारे ईसाई शिक्षकों में से एक ने, जो मेरे मित्र थे, पूछा, "तुम ईसा में विश्वास करते हो?" "हाँ", मैंने उत्तर दिया; "पर कदाचित् थोड़ी अधिक श्रद्धा के साथ।" "तो तुम बपतिस्मा (दीक्षा) क्यों नहीं ले लेते?" मुझे बपतिस्मा कैसे दिया जा सकता है? किसके द्वारा? वह मनुष्य कहाँ है, तो सच्चा बपतिस्मा दे सकता है? बपतिस्मा का अर्थ क्या है? क्या यह फार्मूले बोलते हुए तुम्हारे ऊपर पानी छिड़क देना अथवा तुमको पानी में डुबो देना है?

बपतिस्मा का अर्थ है, आध्यात्मिक जीवन में सीधा प्रवेश। यदि तुमको वास्तविक बपतिस्मा मिलता है, तो तुम जानते हो कि तुम शरीर नहीं हो, वरन् आत्मा हो। यदि तुम दे सकते हो, तो मुझे कह बपतिस्मा दो। यदि नहीं, तो तुम ईसाई नहीं हो। तथाकथित बपतिस्मा प्राप्त होने के बाद तो तुम पूर्ववत् ही रहते हो। केवल यह कहने का क्या अर्थ है कि तुमको ईसा के नाम में बपतिस्मा दिया गया है। कोरी बकबक--अपनी मूर्खता से संसार को निरन्तर क्षुब्ध करना! 'सदा अज्ञानान्धकार में लिपटे हुए, फिर भी अपने को बुद्धिमान और विद्वान् समझते हुए, मूर्ख इधर-उधर लड़खड़ाते अन्धे द्वारा मार्ग-दर्शित अन्धे के समान बार-बार चक्कर काटते हैं।'* इसलिए यह मत कहो कि तुम ईसाई हो, बपतिस्मा और इसी प्रकार की अन्य बातों की

* कठोपनिषद् ॥१।२।५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डींग मत हाँको।

निश्चय ही सच्चा बपतिस्मा होता है, जैसे आरम्भ में जब ईसा पृथ्वी पर आये और उन्होंने उपदेश दिया। वे प्रबुद्ध, वे महान् आत्माएँ, जो समय-समय पर पृथ्वी पर आती रहती हैं, उनमें हमारे प्रति ईश्वरीय दर्शन का उद्घाटन करा देने की शक्ति रहती है। यही सच्चा बपतिस्मा है। तुम देखते हो कि प्रत्येक धर्म में फार्मूलों और कर्मकाण्डों से पहले सार्वभौम सत्य का बीज रहता है। समय की यात्रा में यह सत्य बिसर जाता है; मानो बाह्य रूपों और अनुष्ठानों ने उसका गला घोंट दिया हो। रूप रह जाते हैं——हम केवल मंजूषा को पाते हैं, जिसमें से आत्मा उड़ गयी है। तुम्हारे पास बपतिस्मे का रूप है, पर बपतिस्मे के जीवन्त तत्त्व को बहुत थोड़े ही जगा सकते हैं। रूप से काम नहीं चलेगा। यदि हम जीवन्त सत्य का जीवन्त ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें उसमें सच्चाई के साथ दीक्षित होना होगा। यही आदर्श है।

गुरु मुझे सिखाये और प्रकाश में पहुँचाये, मुझे उस शृंखला की एक कड़ी बनाये, जिसकी कि वह स्वयं एक कड़ी है। साधारण मनुष्य गुरु बनने का दावा नहीं कर सकता। गुरु ऐसा मनुष्य होना चाहिए, जिसने जान लिया है, दैवी सत्य को वास्तव में अनुभव कर लिया है, और अपने को आत्मा के रूप में देख लिया है। केवल बातें करनेवाला गुरु नहीं हो सकता। मेरे समान एक वाचाल मूर्ख बातें बहुत बना सकता है, पर गुरु नहीं हो सकता। एक सच्चा गुरु शिष्य से कहेगा, "जा और अब पाप न कर", और शिष्य अब पाप नहीं कर सकता——उस व्यक्ति में पाप करने की शक्ति नहीं रहती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने इस जीवन में ऐसे मनुष्यों को देखा है। मैंने बाइबिल और इस प्रकार के सब ग्रन्थ पढ़े हैं; वे अद्‌भुत हैं। पर जीवन्त शक्ति तुमको पुस्तकों में नहीं मिल सकती। वह शक्ति, जो एक क्षण में जीवन को परिवर्तित कर दे, केवल उन जीवन्त प्रकाशवान आत्माओं से ही प्राप्त हो सकती है, जो समय-समय पर हमारे बीच में प्रकट होती रहती है। केवल वे ही गुरु होने के योग्य हैं। तुम और मैं केवल थोथी बकबक है, गुरु नहीं। हम अपनी बातों से अवांछनीय कम्पन उत्पन्न करके संसार को अधिक क्षुब्ध कर रहे हैं। हम आशा करते हैं, प्रार्थना करते हैं और संघर्ष करते जाते हैं, और वह दिन आयेगा, जब हम सत्य पर पहुँचेंगे और हमें बोलने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

'गुरु एक सोलह वर्ष का लड़का था; उसने एक अस्सी वर्ष के मनुष्य को सिखाया। गुरु की शिक्षण-विधि मौन थी; और शिष्य की सब शंकाओं का सदा के लिए समाधान हो गया।* यह है गुरु। तनिक सोचो, यदि तुमको ऐसा व्यक्ति मिले, तो तुमको उस व्यक्ति के प्रति कितना विश्वास और प्रेम रखना चाहिए। क्यों, वह साक्षात् ईश्वर है, उससे तनिक भी कम नहीं! इसलिए ईसा के शिष्यों ने ईश्वर के समान उसकी पूजा की। शिष्य को गुरु की पूजा स्वयं ईश्वर के समान करनी चाहिए। जब तक मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार स्वयं ही न कर ले, वह अधिक से अधिक सजीव ईश्वर को, मनुष्य के रूप में ईश्वर को ही जान सकता है, इसके अतिरिक्त वह ईश्वर को कैसे जानेगा?

यह अमेरिका में एक व्यक्ति है, ईसा से १९०० वर्ष बाद

* द्र० दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् ॥१२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पैदा हुआ, जो ईसा की यहूदी जाति का भी नहीं है। उसने ईसा अथवा उसके परिवार को नहीं देखा है। वह कहता है, "ईसा ईश्वर थे। यदि तुम इसमें विश्वास नहीं करते, तो तुम नरक में जाओगे।" हम समझ सकते हैं कि शिष्यों ने इस पर कि ईसा ईश्वर है, किस प्रकार विश्वास किया; वह उनके गुरु थे, उन्होंने विश्वास किया होगा कि वे ईश्वर हैं। पर इस अमेरिकन का उन्नीस सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए उस मनुष्य से क्या सम्बन्ध है? यह युवक मुझसे कहता है कि अगर मैं ईसा में विश्वास न करूँ, तो मुझे नरक जाना पड़ेगा। वह ईसा के विषय में क्या जानता है? वह पागलखाने के योग्य है। इस प्रकार के विश्वास से काम न चलेगा। उसे अपना गुरु खोजना पड़ेगा।

ईसा फिर जन्म ले सकते हैं, तुम्हारे पास आ सकते हैं। तब, यदि तुम ईश्वर की भाँति उनकी पूजा करो, तो तुम ठीक करोगे। हम सब को गुरु के आगमन के समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, और गुरु की पूजा ईश्वर की भाँति की जानी चाहिए। वह ईश्वर है, उससे तनिक भी कम नहीं। गुरु तुम्हारे देखते-देखते क्रमशः अन्तर्धान हो जाते हैं, और रह क्या जाता है? गुरु के चित्र का स्थान स्वयं ईश्वर ले लेता है। गुरु वह आभामय चेहरा है, जिसे ईश्वर हम तक पहुँचने के लिए धारण करता है। जब हम एकटक उसे निहारते हैं, तो धीरे-धीरे चेहरा गिर जाता है और ईश्वर प्रकट हो जाता है।

'मैं गुरु को नमस्कार करता हूँ, जो दैवी आनन्द की मूर्ति हैं, उच्चतम ज्ञान के विग्रह हैं, और महानतम दैवी आनन्द के दाता हैं, जो शुद्ध, पूर्ण, अद्वितीय, सनातन, सब सुख-दुःख से परे, सर्वगुणातीत और सर्वोच्च हैं।' वास्तव में गुरु ऐसे ही होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि शिष्य उन्हें ईश्वर समझता है और उनमें विश्वास रखता है, श्रद्धा रखता है, उनकी आज्ञा पालता हैं और बिना शंका किये उनके पीछे चलता है। गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध ऐसा ही है।

शिष्य को अगली शर्त जो पूरी करनी है, वह यह है कि उसमें मुक्त होने की आकांक्षा अत्यन्त तीव्र हो।

हम उन पतिंगों के समान हैं, जो धधकती ज्वाला में प्रवेश करते हैं,——यह जानकर कि वह हमें जला डालेगी, यह जानकर कि इन्द्रियाँ हमें केवल जलाती हैं, वे केवल वासनाओं में वृद्धि करती हैं। 'वासनाएँ कभी भोग से तृप्त नहीं होतीं। भोग से वासनाओं में उसी प्रकार वृद्धि होती है, जैसे अग्नि को दिया हुआ घी अग्नि में वृद्धि करता है।'* वासना से वासना बढ़ती है। यह सब जानते हुए भी लोग सदा इसमें डुबकी लगाते रहते हैं। जन्म-जन्मान्तरों से वे वासना-वस्तुओं के पीछे दौड़ते रहे हैं, फलस्वरूप भयंकर यातनाएँ भोगते रहे हैं, फिर भी वे वासनाओं से पीछा नहीं छुड़ा पाते। जिस धर्म को उन्हें वासनाओं के इस भयकारी बन्धन से मुक्त करना चाहिए था, उस धर्म को भी उन्होंने अपनी वासनाओं की पूर्ति का साधन बना लिया है। वे कदाचित् ही कभी ईश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि वह उनको इस शरीर और इन्द्रियों के बन्धन से, वासनाओं की इस दासता से मुक्ति दिलाये। इसके स्थान पर, वे उससे स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए, दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते हैं, "हे ईश्वर, मेरा सिर-दर्द दूर करो, मुझे कुछ धन अथवा अमुक वस्तु दो!"

दृष्टि का क्षेत्र इतना छोटा, इतना पतित, इतना पशुता-

* मनुसंहिता ॥२॥९४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मय, इतना जंगली हो गया है ! इस शरीर से परे कोई किसी वस्तु की कामना नहीं करता । ओह, यह भयानक पतन, इसकी यह भयानक यातना ! मांस का तनिक सा पिण्ड, पाँच इन्द्रियाँ, यह पेट ! उदर और यौन-संघात के अतिरिक्त यह संसार क्या है ? करोड़ों नर-नारियों को देखो——यही है, जिसके लिए वे जी रहे हैं । इन्हें उनसे छीन लो, तो उन्हें अपना जीवन रिक्त, निरर्थक और असह्य जान पड़ेगा । हम ऐसे हैं । और ऐसा हमारा मन है; यह निरन्तर उन उपायों और साधनों के पीछे भटकता रहता है, जिनसे हमारी उदर और काम की भूख को तृप्ति प्राप्त हो । यह निरन्तर चल रहा है । साथ ही अनन्त दुःख भी है; शरीर की ये वासनाएँ केवल क्षण भर के लिए सन्तोष देती हैं और अनन्त दुःख लाती हैं । यह उस प्याले को पीने के समान है, जिसकी ऊपरी तह तो अमृत है, पर उसमें नीचे हलाहल भरा हुआ है । पर फिर भी हम इन सब वस्तुओं के पीछे पागल हैं ।

किया क्या जा सकता है ? इस क्लेश से निकलने का केवल एक मार्ग है, सब इन्द्रियों और वासनाओं का परित्याग । यदि तुम आध्यात्मिक बनना चाहते हो, तो तुमको त्याग करना होगा । यह असली कसौटी है । इस संसार को छोड़ो——इन्द्रियों की इस निरर्थकता को । सच्ची इच्छा केवल एक है : यह जानना कि सत्य क्या है, आध्यात्मिक होना । अधिक भौतिकता नहीं, अधिक अहं नहीं । मुझे आध्यात्मिक बनना ही होगा । इच्छा को शक्तिशाली, तीव्र होना चाहिए । यदि किसी मनुष्य के हाथ-पैर इस प्रकार बाँध दिये जायँ कि वह हिल-डुल न सके और तब उसके शरीर पर दहकता अंगारा रखा जाय, तो वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उसे हटा देने का प्रयास करेगा। जब मुझमें इस प्रकार की तीव्र इच्छा इस जलते हुए संसार को हटा फेंकने के वास्ते अथक संघर्ष करने के लिए उत्पन्न होगी, तो मेरे लिए दैवी सत्य की झांकी मिलने का समय आ जायगा।

मुझे देखो। यदि मेरी छोटीसी नोटबुक, जिसमें दो-तीन डॉलर हैं खो जाती है, तो मैं उसे ढूंढ़ने के लिए बीस बार घर के भीतर जाता हूँ। वह फिक्र, वह चिन्ता, वह कशमकश! यदि तुममें से कोई मुझे क्रुद्ध कर देता है, तो मैं उसे बीस वर्ष याद रखता हूँ, मैं न क्षमा कर सकता हूँ, न भूल सकता हूँ। इन्द्रियों की छोटीसी वस्तुओं के लिए मैं इस प्रकार संघर्ष कर सकता हूँ। वह कौन है, जो ईश्वर के लिए इस प्रकार प्रयास करता है? 'बालक अपने खेल में सब कुछ भूल जाते हैं। युवक इन्द्रियों के आनन्द के पीछे पागल हैं; उन्हें और किसी बात की चिन्ता नहीं है। वृद्ध अपने पुराने दुष्कृत्यों के लिए पश्चात्ताप कर रहे हैं' (शंकराचार्य)। वे अपने पुराने भोगों के विषय में सोच रहे हैं—वे वृद्ध, जो अब कोई भोग नहीं प्राप्त कर सकते। वे जुगाली कर रहे हैं—वे अधिक से अधिक यही कर सकते हैं। कोई उतनी तीव्र लगन के साथ ईश्वर के लिए आतुर नहीं होता, जितनी तीव्रता से वे इन्द्रिय-भोग्य वस्तुओं के लिए लालायित होते हैं।

सभी लोग कहते हैं कि ईश्वर ही सत्य है, वही एक है, जो वास्तव में है; केवल चेतना की ही सत्ता है, जड़ की नहीं। फिर भी ईश्वर से वे जो माँगते हैं, वह शायद ही चेतना होती है। वे सदा पार्थिव वस्तुओं की याचना करते हैं। उनकी प्रार्थना में चेतन को जड़ से अलग नहीं रखा जाता। धर्म अब केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पतन ही रह गया है। सब कुछ पाखण्ड बनता जा रहा है। वर्ष बीतते जा रहे हैं और आध्यात्मिक उपलब्धि कुछ भी नहीं होती। पर मनुष्य को केवल एक वस्तु की भूख होनी चाहिए, आत्मा की, क्योंकि केवल आत्मा को ही अस्तित्व है। यही आदर्श है। यदि तुम इसे अभी नहीं प्राप्त कर सकते, तो कहो, "मैं अभी वहाँ तक नहीं पहुँच सकता। वह आदर्श है, मैं जानता हूँ, पर मैं अभी उसको चरितार्थ नहीं कर सकता।" पर तुम यह नहीं करते। तुम धर्म को निम्न स्तर पर उतार लाते हो और आत्मा का नाम लेकर जड़ के पीछे दौड़ते हो। तुम सब नास्तिक हो, तुम इन्द्रियों के अतिरिक्त और किसी में विश्वास नहीं करते! 'अमुक ने ऐसा-ऐसा कहा है—इसमें कुछ तत्त्व हो सकता है। हम कर देखें और मजा लें। हो सकता है, कुछ लाभ हो जाय; शायद मेरी टूटी टाँग ठीक हो जाय।'

रोगी लोग बहुत दुःखी होते हैं; वे ईश्वर के बड़े उपासक होते हैं, इसलिए कि वे आशा करते हैं कि यदि वे उससे प्रार्थना करेंगे, तो वह उन्हें चंगा कर देगा। ऐसा नहीं है कि यह सब एकदम बुरा है—यदि ऐसी प्रार्थनाएँ सच्ची हों और लोग यह याद रखें कि यह धर्म नहीं है। गीता में (७।१६) श्रीकृष्ण कहते हैं, "चार प्रकार के मनुष्य मेरी उपासना करते हैं : आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और सत्य के ज्ञाता।" जो लोग दुःखग्रस्त होते हैं, वे सहारे के लिए ईश्वर के निकट जाते हैं। यदि वे रोगी होते हैं, तो नीरोग होने के लिए उसकी पूजा करते हैं; यदि उनका धन नष्ट हो जाता है, तो वे उसकी पुनः प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। और दूसरे लोग हैं, जो वासनाओं से भरे हैं, वे उससे सब प्रकार की वस्तुएँ माँगते हैं—नाम, यश, सम्पत्ति,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद इत्यादि। वे कहते हैं, "हे पवित्र मेरी, यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण हो जायगी, तो मैं तुम्हें एक भेंट चढ़ाऊँगा। यदि तुम मेरी इच्छा पूर्ण करने में सफल होती हो, तो मैं ईश्वर की पूजा करूँगा और प्रत्येक वस्तु का एक अंश तुम्हें दूँगा।" जो मनुष्य इतने सांसारिक नहीं होते, पर फिर भी जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं है, वे उसके बारे में जानने की इच्छा रखते हैं। वे दर्शनों का अध्ययन करते हैं, धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, उपदेश सुनते हैं और ऐसे ही अन्य कार्य करते हैं। वे जिज्ञासु हैं। अन्तिम श्रेणी उन लोगों की है, जो ईश्वर की पूजा करते हैं और उसे जानते हैं।

ये चारों श्रेणियाँ भली हैं, बुरी नहीं। ये सब उसकी उपासना करते हैं।

पर हम शिष्य बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारा एक-मात्र ध्येय है, उच्चतम सत्य के ज्ञान की प्राप्ति। हमारा ध्येय सब से ऊँचा है। हमने अपने से बड़े-बड़े शब्द कहे हैं—परम अनुभूति आदि-आदि। हमें उन शब्दों के अनुरूप होना चाहिए। हम आत्मा में स्थित होकर आत्मा में आत्मा की उपासना करें। हमारा आधार आत्मा है, मध्य आत्मा है और अन्त आत्मा है। संसार कहीं न हो। उसे जाने दो और आकाश में चक्कर लगाने दो—चिन्ता क्या है? तू आत्मा में स्थित हो! यह ध्येय है। हम जानते हैं कि हम अभी उस तक नहीं पहुँच सकते। चिन्ता मत करो, निराश न होओ और आदर्श को नीचे न घसीटो। महत्त्वपूर्ण बात यह है : कि तुम इस शरीर के बारे में, अपने बारे में, जड़ के रूप में—मृत, जड़, अचेतन पदार्थ के रूप में कितना कम सोचते हो और अपने बारे में एक उज्ज्वल, अमर अस्तित्व के रूप में कितना अधिक सोचते हो। तुम अपने को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उज्ज्वल, अमर अस्तित्व के रूप में जितना अधिक सोचोगे, उतने ही अधिक तुम जड़ पदार्थ, शरीर और इन्द्रियों से सम्पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने के लिए उत्सुक होगे। मुक्त होने की तीव्र इच्छा यही है।

चौथी और अन्तिम शर्त शिष्यता की यह है कि उसे सत् और असत् का विवेक हो। केवल एक वस्तु—ईश्वर—है, जो सत्य है। सर्वदा मन उसकी ओर लगा रहे, उसे समर्पित रहे। ईश्वर है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, और सब आता-जाता रहता है। संसार की कोई भी इच्छा भ्रम है, इसलिए कि संसार मिथ्या है। जब तक और सब मिथ्या—जैसा वह वास्तव में है—प्रतीत न होने लगे, मन को केवल ईश्वर के प्रति ही अधिकाधिक अनुभवशील होना चाहिए।

ये वे चार शर्तें हैं, जिन्हें शिष्य बनने की इच्छा रखनेवाले को पूरा करना होगा। इनको पूरा किये बिना वह सच्चे गुरु के सम्पर्क में आने का अधिकारी नहीं बनेगा। और यदि सौभाग्य-वश वह उसके सम्पर्क में आ भी जाता है, तो गुरु द्वारा संचरित शक्ति से उसे स्फुरण नहीं प्राप्त होगा। इन शर्तों के बारे में कोई समझौता नहीं हो सकता। इन सब शर्तों के—इन सब तैयारियों के—पूर्ण होने पर शिष्य का हृदय-कमल खिलेगा और तब भ्रमर आयेगा। तब शिष्य को ज्ञान होगा कि गुरु उसके शरीर में, उसके भीतर था। वह खिलता है। वह अनुभूति पाता है। वह जीवन के सागर को पार करता है, परे जाता है। वह इस भयावह सागर को पार करता है; और दयावश, बिना लाभ अथवा स्तुति का विचार किये, दूसरों को इसे पार करने में सहायता देता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिल्वमंगल *

'भक्तमाल' नामक एक भारतीय पुस्तक में यह एक कहानी है। किसी गाँव में एक ब्राह्मण नवयुवक रहता था। वह नवयुवक एक दूसरे गाँव की एक नीच स्त्री के प्रेम में पागल हो रहा था। दोनों गाँवों के बीच एक बड़ी नदी थी और वह नौजवान प्रतिदिन एक छोटी नाव से नदी पार करके अपनी प्रेमिका के पास जाता था। तभी, एक दिन उसे अपने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करनी थी; वह जा नहीं सकता था, पर साथ ही वह अपनी प्रेमिका के पास जाने को जैसे मर रहा था। वह जा तो नहीं सका, अन्त्येष्टि-सम्बन्धी कार्य तो करने ही थे। हिन्दू समाज में यह कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। वह मन ही मन क्रोध से उबल रहा था, परन्तु विवश था। अन्त में कार्य समाप्त हुआ, रात आयी और रात के साथ ही भयानक तूफान भी आया। भयानक वर्षा हो रही थी, नदी में भी भयंकर लहरें उठ रही थीं। ऐसे में नदी पार करना बहुत खतरनाक था। फिर भी वह नवयुवक नदी के किनारे तक गया। उस समय वहाँ कोई नाव भी प्राप्य न थी। मल्लाह इतने भयभीत थे कि नदी पार करने से डरते थे। परन्तु उसे तो जाना ही था, उसका मन मतवाला हो रहा था, उस स्त्री के प्रेम में तड़फ रहा था, अतः वह अवश्य जायगा। पास ही लकड़ी का एक कुन्दा बहता जा रहा था, उसने उसे पकड़ लिया, और उसी के सहारे वह नदी भी पार कर गया। दूसरे किनारे पर पहुँचकर उसने उस कुन्दे

---

* अमेरिका-प्रवास में कुमारी एस० ई० वाल्डो के कागजों में स्वामी राघवानन्द द्वारा प्राप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को निकालकर तट पर डाल दिया और अपनी प्रेमिका के घर गया। घर के द्वार बन्द थे। उसने द्वार खटखटाया, परन्तु वायु का वेग इतना तेज था कि किसी ने उसकी पुकार न सुनी। वह घर के चारों ओर घूमा और अन्त में एक चीज दीवार पर लटकती-सी उसे दिखी, उसने उसे रस्सी समझा। उसने उस रस्सी को पकड़ लिया, और मन ही मन बोला, 'ओह, मेरी प्रेमिका ने मेरे ऊपर जाने के लिए रस्सी लटका रखी है।' उसी रस्सी के सहारे वह दीवार पर चढ़ गया, और दूसरी ओर पहुँच गया। तभी उसका पाँव फिसला, वह गिर पड़ा, गिरने से ध्वनि हुई और घर के निवासी जाग गये। वह स्त्री बाहर आयी, और अपने प्रेमी को बेहोश पड़ा पाया। किसी तरह उसे होश में लायी, तब उसे अनुभव हुआ कि उसके प्रेमी की देह से भयानक दुर्गन्ध आ रही थी। उसने पूछा, "तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हारे शरीर से इतनी दुर्गन्ध क्यों आ रही है? तुम घर में कैसे आये?" उसके प्रेमी ने कहा, "क्यों, क्या तुमने मेरे लिए रस्सी नहीं लटका रखी थी?" स्त्री मुसकरायी और बोली, "कैसा प्रेम? हम लोग तो धन के लिए हैं, क्या समझते हो कि तुम्हारे लिए मैं रस्सी लटकाऊँगी? तुम कितने महान् मूर्ख हो? तुमने नदी कैसे पार की?" "क्यों, मैंने एक बहते कुन्दे को पकड़ लिया था।" स्त्री ने सुनकर कहा, "तो चलो, जरा देखें तो।" वह रस्सी एक नाग था, भयानक विषधर, जिसके तनिक छू जाने से ही मृत्यु निश्चित थी। जब रस्सी समझकर उसने उसकी पूँछ पकड़ी थी, उसका सिर उस समय बिल में था और वह भीतर जा रहा था। प्रेम के पागलपन ने उसे ऐसा करने को विवश किया था। जब विषधर का सिर बिल में हो और शरीर बाहर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उसे पकड़ा जाय तो वह कदापि अपना सिर बाहर न निकालेगा। इसीलिए वह मतवाला प्रेमी उसके सहारे ऊपर चढ़ गया। लेकिन बोझ और खिचाव से विषधर मर गया था। "तुमने कुन्दा कहाँ पाया?" "वह नदी में बह रहा था।" वह कुन्दा एक दुर्गन्धपूर्ण मृतशरीर था। जल-प्रवाह से वह भयानक रूप से बदल गया था और उसे प्रेमी ने कुन्दा समझा था; इसी से उसके शरीर से इतनी भयानक दुर्गन्ध आ रही थी। स्त्री ने उसकी ओर देखकर कहा, "मैंने कभी प्रेम में विश्वास नहीं किया। हम लोग कभी नहीं करते। लेकिन अगर यह प्रेम नहीं है, तो भगवान भला करे! हम लोग वास्तव में जानते ही नहीं कि प्रेम क्या है। परन्तु मेरे प्रेमी, तुमने मुझ जैसी स्त्री को दिल क्यों दिया? यही दिल तुमने ईश्वर को क्यों नहीं दिया? शायद तुम पूर्ण हो जाते।" उस मनुष्य के मस्तिष्क पर जैसे बिजली चमकी और उसी चमक में एक पल को उसे उस लोक की झाँकी-सी दिखी। "क्या वहाँ ईश्वर है?" "हाँ, हाँ, मेरे मित्र, ईश्वर वहीं है," स्त्री ने कहा। और वह आदमी चल पड़ा वहाँ से। जंगल में चला गया और वह लगा रोने और ईश्वर से प्रार्थना करने, 'मैं तुम्हें चाहता हूँ, हे ईश्वर! मेरे प्रेम का यह तूफान एक क्षुद्र मानव में शान्ति नहीं पा सकता। मैं तो वहीं मन लगाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे दिल के प्रेम की यह महानदी जा सके। ऐसे प्यार के समुद्र को पाना चाहता हूँ। मेरी यह प्रेम-नदी छोटे-मोटे नालों की पुलिया में नहीं जा सकती, इसे तो असीम सागर चाहिए। वह तुम्हारे पास है, प्रभो! मेरे पास आओ।' अतः वहाँ वह कई वर्षों तक रहा। कई वर्ष के बाद उसे लगा कि उसे सफलता प्राप्त हो गयी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह संन्यासी हो गया और नगरों की ओर चला। एक दिन वह एक नदी के किनारे बैठा था। एक स्नान-घाट पर उसने एक बहुत सुन्दरी युवती, नगर के साहूकार की पत्नी, को देखा। उसके साथ नौकर था। वह युवती आयी और सामने से चली गयी। उस संन्यासी के भीतर वही पुराना मनुष्य फिर जाग गया। उस सुन्दर चेहरे ने फिर उसे आकर्षित कर लिया। वह योगी उसे देखता ही रहा, फिर उठ खड़ा हुआ और उस स्त्री के पीछे-पीछे उसके घर तक चला गया। तभी उस स्त्री का पति आ गया और संन्यासी को गेरुए वस्त्र में देखकर बोला, "आइये महाराज, हम आपकी क्या सेवा करें?" योगी ने कहा, "मैं तुमसे एक भयानक बात कहूँगा।" "कुछ भी कहें महाराज, मैं एक गृहस्थ हूँ। और मुझसे जो भी कोई वस्तु माँगता है, मैं देने को तत्पर हूँ।" "मैं तेरी पत्नी को देखना चाहता हूँ।" उस आदमी ने कहा, "महाराज, यह क्या? लेकिन मैं पवित्र हूँ और मेरी पत्नी भी पवित्र है और ईश्वर तो सभी की रक्षा करता ही है। आओ महाराज, भीतर आओ।" योगी भीतर आया और पति ने पत्नी का परिचय उससे कराया। उस स्त्री ने भी पूछा, "मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?" योगी उसे देखता रहा, देखता रहा; फिर बोला, "माँ, क्या मुझे अपने बालों से दो काँटे दे सकोगी?" "ये रहे काँटे!" उसी से लेकर योगी ने दोनों काँटों को अपनी दोनों आँखों में घुसेड़ लिया और बोला, "तुम आँखें वैरिन हो, अब जाओ। अब कभी हाड़-मांस देखकर मत ललचाना। अगर तुम्हें देखना ही हो, तो आत्मा की आँखों से वृन्दावन के उसी चरवाहे को देखो। वही तुम्हारी आँखें हैं अब!" फिर वह जंगल में चला गया। वहाँ वह फिर रोया,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खूब रोया। यही प्रेम की वह अमर धारा थी, जो सत्य की प्राप्ति के लिए उसमें संघर्ष कर रही थी और जिसे अन्त में सफलता मिली।

उसने अपने दिल को प्रेम की इस धारा में उचित लक्ष्य की ओर चालित किया, जिससे वह उस चरवाहे के पास पहुँच गया। कहानी तो आगे बताती है कि उसने ईश्वर को कृष्ण के रूप में देखा था। तब एक बार उसे दुःख हुआ कि उसकी आँखें नहीं थीं और वह केवल अन्तर्दृष्टि से ही देख सकता था। तभी उसने प्रेम-सम्बन्धी कुछ बहुत सुन्दर कविताएँ लिखीं। संस्कृत में पुस्तकें लिखनेवाले सभी लेखक सर्वप्रथम अपने गुरु को प्रणाम करते हैं। इसी तरह उसने भी अपने प्रथम गुरु के रूप में उस स्त्री को ही प्रणाम किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालक गोपाल की कथा

"माँ ! मुझे अकेले जंगल में से होकर पाठशाला जाने में डर लगता है, दूसरे लड़कों को तो घर से पाठशाला और पाठशाला से घर ले जानेवाले नौकर या कोई न कोई और हैं, फिर मेरे लिए ऐसा क्यों नहीं हो सकता ?"—जाड़े की एक शाम, पाठशाला जाने की तैयारी करते हुए ब्राह्मण बालक गोपाल ने अपनी माँ से कहा। पाठशाला उन दिनों सुबह और शाम के समय लगा करती थी। शाम को पाठशाला के बन्द होते-होते अँधेरा हो जाता था और रास्ता जंगल के बीच से होकर था।

गोपाल की माँ विधवा थी। गोपाल जब छोटासा बच्चा था, तभी उसका बाप मर गया था। उसने सांसारिक वस्तुओं की कभी परवाह नहीं की थी और सदा अध्ययन-अध्यापन, पूजा-पाठ करने तथा इस ओर दूसरों को भी प्रवृत्त करने में रत रहा। इस प्रकार उसने एक सच्चे ब्राह्मण का जीवन यापन किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् इस बेचारी विधवा ने संसार के प्रति जो उसका थोड़ासा भी लगाव था, उसे भी त्याग दिया। अब उसकी सम्पूर्ण आत्मा ईश्वरोन्मुख थी, और वह प्रार्थना, व्रत तथा संयम द्वारा धैर्यपूर्वक उस महान् मुक्तिदूत मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही थी, जो उसे सुख-दुःख, अच्छे-बुरे के सनातन संगी अपने पति से दूसरे जीवन में मिला देगी। वह अपनी छोटीसी कुटिया में रहती थी। एक छोटेसे धान के खेत से, जो उसके पति को दक्षिणा में मिला था, उसे खाने भर को काफी चावल मिल जाता था; और उसकी कुटिया के चारों तरफ बँसवाड़ियों से और नारियल, आम तथा लीची के पेड़ों से घिरी जो थोड़ी जमीन थी उसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाँववालों की मदद से उसे साल भर तक काफी सब्जी मिल जाती थी। इसके अलावा शेष समय में वह रोज घण्टों चरखा काता करती थी।

इसके बहुत पहले कि बाल रवि की अरुण रश्मियाँ नारियल के शीर्ष-पत्रों का स्पर्श करें और घोंसलों में चिड़ियों का कलरव शुरू हो, वह जग जाती थी, और जमीन पर बिछे चटाई और कम्बल के अपने बिस्तरे पर बैठकर प्राचीन सती-साध्वियों तथा ऋषि-मुनियों एवं नारायण, शिव, तारा आदि देवी-देवताओं और सर्वोपरि अपने उन हृदयाराध्य श्रीकृष्ण का नाम-जप करने लगती थी, जिन्होंने संसार को उपदेश देने तथा उसके परित्राण के लिए गोपाल रूप धारण किया था। और वह यह सोच-सोचकर मगन होती जाती थी कि इस तरह वह एक एक दिन अपने पति के पास जा पहुँची है और उसके साथ ही उस अपने हृदयाराध्य गोपाल के पास भी, जहाँ उसका पति पहले ही पहुँच चुका है।

दिन का उजाला होने के पहले ही वह पास के सोते में स्नान कर लेती थी। स्नान करते समय वह प्रार्थना करती जाती थी कि श्रीकृष्ण की कृपा से उसका मन और शरीर दोनों ही निर्मल रहें। इसके बाद वह अपने ताजे-धुले श्वेत सूती वस्त्र धारण करती थी। फिर थोड़ेसे फूल चुनती और पाटी पर थोड़ासा चन्दन घिसकर और तुलसी की कुछ सुगन्धित पत्तियाँ लेकर अपनी कुटिया के एकान्त पूजा-कक्ष में चली जाती थी। इसी पूजा-कक्ष में उसके आराध्य गोपाल निवास करते थे—रेशमी मण्डप के नीचे काष्ठनिर्मित मखमल से मढ़े सिंहासन पर प्रायः फूलों से ढँकी हुई बालकृष्ण की एक पीतल की प्रतिमा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थापित थी। उसका मातृ-हृदय भगवान् को पुत्र-रूप में कल्पित करके ही सन्तुष्ट हो सकता था। अनेक बार वह अपने विद्वान् पति से उन वेदवर्णित निर्गुण निराकार अनन्त परमेश्वर के विषय में सुन चुकी थी। उसने यह सम्पूर्ण चित्त से सुना था और इससे वह केवल एक ही निष्कर्ष तक पहुँच सकी थी कि जो वेदों में लिखा है, वह अवश्य ही सत्य है। किन्तु आह! कहाँ वह व्यापक एवं अनन्त दूरी पर रहनेवाला ईश्वर और कहाँ एक दुर्बल, अज्ञान स्त्री! लेकिन इसके साथ यह भी तो लिखा था कि 'जो मुझे जिस रूप में भजता है, मैं उसे उसी रूप में मिलता हूँ। क्योंकि सब संसारवासी मेरे ही बनाये हुए मार्गों पर चल रहे हैं।' और यह कथन ही उसके लिए पर्याप्त था। इससे अधिक वह कुछ नहीं जानना चाहती थी। और इसीलिए उसके हृदय की सम्पूर्ण भक्ति, निष्ठा एवं प्रेम की भावना गोपाल श्रीकृष्ण और उनके मूर्तविग्रह के प्रति अर्पित थी। उसने यह कथन भी सुना था: 'जिस भावना से तुम किसी हाड़-मांस के व्यक्ति की पूजा करते हो, उसी भावना से श्रद्धा एवं पवित्रता के साथ मेरी भी पूजा करो, तो मैं वह सब भी ग्रहण कर लूँगा।' अतः वह प्रभु को स्वामी के रूप में, एक प्रिय शिक्षक के रूप में और सब से अधिक अपनी आँखों के तारे इकलौते पुत्र के रूप में पूजती थी।

यही समझकर वह उस प्रतिमा को नहलाती-धुलाती थी और धूपार्चना करती थी। और नैवेद्य? आह! वह बेचारी कितनी गरीब थी! लेकिन आँखों में आँसू भरकर वह अपने पति के वे वचन याद करती थी, जो वे उसे धर्मग्रन्थों से पढ़कर सुनाया करते थे। 'प्रेमपूर्वक पत्र-पुष्प, फल-जल जो भी मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्पित किया जाता है, मैं उसे स्वीकार करता हूँ'* और भेंट चढ़ाते समय कहती थी : 'हे प्रभु ! संसार के समस्त पुष्प तुम्हारे लिए ही खिलते हैं, मेरे ये थोड़ेसे साधारण पुष्प स्वीकार करो; तुम जो सारे संसार का भरण-पोषण करते हो, मेरे फलों की यह दीन भेंट स्वीकार करो। मेरे प्रभु, मेरे गोपाल, मैं दुर्बल हूँ, अज्ञानी हूँ। नहीं जानती कि किस विधि से तुम्हारी अर्चा करूँ। तुम्हारे लिए मेरी पूजा पवित्र हो, मेरा प्रेम निःस्वार्थ हो, और यदि मेरी भक्ति में कुछ भी गुण हो, तो वह तुम्हारे लिए ही हो, मुझे केवल प्रेम और प्रेम दो---प्रेम, जिसे दूसरी किसी वस्तु की चाह नहीं, जो केवल प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं माँगता।' संयोग से उसी समय प्रांगण में याचक अपनी सुवह की फेरी में गा रहा था :

'मानव ! मेरे निकट तेरे ज्ञान-गाम्भीर्य का कोई मूल्य नहीं, मैं तो केवल तेरे प्रेम के आगे नत हूँ।

'यह तेरा प्रेम ही है, जिससे मेरा सिंहासन हिल उठता है और मैं विह्वल हो जाता हूँ।

'जरा देखो तो कि प्रेम के कारण ही उस सर्वेश्वर, निराकार, मुक्त प्रभु को भी तेरे संग लीला करने और रहने के लिए मानव-शरीर धारण करना पड़ता है !

'वृन्दावन-कुंज के गोपों के पास भला कौनसी विद्या थी ? गाय दुहनेवाली गोपियाँ कौनसा ज्ञान-विज्ञान जानती थीं ? उन्होंने मुझे केवल अपने प्रेम के मोल से खरीद लिया।'

इस प्रकार उस मातृ-हृदय ने उस अलौकिक तत्त्व में दिव्य

---

* पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥गीता ९।२६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चरवाहे के रूप में अपने पुत्र गोपाल को पाया। उसकी आत्मा जो यन्त्रवत् ही सांसारिक पदार्थों की ओर उन्मुख होती थी, दूसरे शब्दों में उसकी आत्मा जो दैवी आकाश में निरन्तर मँडराती हुई किसी भी लौकिक वस्तु के सम्पर्क से स्खलित हो सकती थी, वह मानो इस बालक में अपने लिए एक लौकिक आश्रय पा गयी। केवल यही एक चीज थी, जिस पर वह अपना समस्त लौकिक सुख एवं अनुराग केन्द्रित कर सकती थी। उसकी प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक विचार, प्रत्येक सुख और उसका जीवन तक, क्या उस बालक के लिए ही नहीं था, जिसके कारण वह अब भी जीवित थी ?

वर्षों तक एक माँ की ममता के साथ वह रोज अपने बच्चे को दिन-दिन बढ़ते हुए देखती रही। और अब जब वह स्कूल जाने लायक हो गया है, उसे अब भी उसकी पढ़ाई-लिखाई का सामान जुटाने के लिए कितना कठिन श्रम करना पड़ता है ! हालांकि ये सब सामान बहुत थोड़े थे। उस देश में जहाँ के लोग मिट्टी के दीपक के प्रकाश में और कुश-काँस की चटाई पर निरन्तर विद्याध्ययन करते हुए सन्तोषपूर्वक सारा जीवन बिता देते हैं, वहाँ एक विद्यार्थी की आवश्यकताएँ ही कितनी ? फिर भी कुछ तो थीं ही; पर इतने के जुगाड़ के लिए भी बेचारी माँ को कई दिन तक घोर परिश्रम करना पड़ता था। गोपाल के लिए एक धोती, एक चादर और चटाई का बस्ता, जिसमें लिखने का अपना ताड़-पत्र और सरकण्डे की कलम समेटकर वह पढ़ने पाठशाला जाता था, और स्याही-दावात—इन सब को खरीदने के लिए उसे अपने चरखे पर कई-कई दिनों तक काम करना पड़ता था। और एक शुभ दिन गोपाल ने जब पहले-पहल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिखने का श्रीगणेश किया, उस समय का उसका आनन्द केवल एक माँ का हृदय—एक गरीब माँ का हृदय—ही जान सकता है !

लेकिन आज उसके मन पर एक दुश्चिन्ता छायी हुई है ! गोपाल को अकेले जंगल में से होकर जाने में डर लग रहा है। इसके पहले कभी उसे अपने वैधव्य की, अपने एकाकीपन और निर्धनता की अनुभूति इतने कटु रूप में नहीं हुई थी। एक क्षण के लिए सब कुछ अन्धकारमय हो गया, किन्तु तभी उसे प्रभु के शाश्वत आश्वासन का स्मरण हो आया कि 'जो सब चिन्ताएँ त्यागकर मेरे शरणागत होते हैं, मैं उनकी समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण कर देता हूँ'। * और इस आश्वासन में पूर्णतया विश्वास करनेवालों में एक उसकी भी आत्मा थी।

अतः माता ने अपने आँसू पोंछ लिये और अपने बच्चे से कहा कि डरो नहीं ! जंगल में मेरा एक दूसरा बेटा रहता है और गायें चराता है। उसका भी नाम गोपाल है। जब भी तुम्हें जंगल में जाते समय डर लगे, अपने भैया को पुकार लिया करना।

बच्चा भी तो आखिर उसी माँ का बेटा था, उसे विश्वास हो गया।

उसी दिन पाठशाला से घर लौटते समय जंगल में जब गोपाल को डर लगा, तब उसने अपने चरवाहे भाई गोपाल को पुकारा, "गोपाल भैया ! क्या तुम यहीं हो ? माँ ने कहा था कि तुम हो और मैं तुम्हें पुकार लूँ। मैं अकेले डर रहा हूँ।" और पेड़ों के पीछे से एक आवाज आयी, 'डरो मत छोटे भैया, मैं यहीं हूँ, निर्भय होकर घर चले जाओ।'

---

* अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ गीता ॥९।२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस तरह रोज वह बालक पुकारा करता था और रोज वही आवाज उसे उत्तर देती थी। माँ ने यह सब आश्चर्य एवं प्रेम के भाव से सुना और गोपाल को सलाह दी कि अब की बार वह अपने जंगलवाले भाई को सामने आने के लिए कहे।

दूसरे दिन जब वह बालक जंगल से गुजर रहा था, उसने अपने भाई को पुकारा। सदा की भाँति ही आवाज आयी। लेकिन बालक ने भाई से कहा कि वह सामने आये। उस आवाज ने उत्तर दिया। 'आज मैं बहुत व्यस्त हूँ भैया, नहीं आ सकता।' लेकिन बालक ने हठ किया, तब वह पेड़ों की छायाओं से एक ग्वाले के वेष में सिर पर मोरपंख का मुकुट पहने और हाथ में मुरली लिये बाहर निकल आया। वे दोनों ही गोपाल-आपस में मिलकर बड़े खुश हुए। वे घण्टों जंगल में खेलते रहे,——पेड़ों पर चढ़ते, फल-फूल बटोरते, पाठशाला जाने में देर हो गयी। तब अनिच्छापूर्वक बालक गोपाल पाठशाला के लिए चल पड़ा। वहाँ उसे अपना कोई पाठ याद न रहा, क्योंकि उसका मन तो इसमें लगा था कि कब वह जंगल में जाकर अपने भाई के साथ खेले।

इसी तरह महीनों बीत गये। माँ बेचारी यह सब रोज-रोज सुनती थी और ईश्वरकृपा के आनन्द में अपना वैधव्य, अपनी गरीबी सब कुछ भूल जाती थी, और हजार बार अपनी निर्धनता को धन्य मानती थी।

इसी समय पाठशाले के गुरुजनों को अपने पितरों के सम्मानार्थ कुछ धार्मिक कृत्य करने थे। इन ग्राम-शिक्षकों को, जो निःशुल्क रूप से कुछ बालकों को इकट्ठा करके पाठशाला चलाते थे, खर्च के लिए यथावसर प्राप्त होनेवाली भेंटों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। प्रत्येक शिष्य को भेंट में धन अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तुएँ लानी होती थीं। और विधवापुत्र अनाथ गोपाल को ?— दूसरे लड़के जब यह कहते कि वे भेंट में क्या-क्या लायेंगे, तब वे गोपाल के प्रति तिरस्कार से मुसकराया करते थे।

उस रात गोपाल का मन बहुत भारी था। उसने अपनी माँ से गुरुजी को भेंट में देने के लिए कुछ माँगा। लेकिन बेचारी माँ के पास भला क्या रखा था! लेकिन उसने हमेशा की तरह इस बार भी अपने गोपाल पर ही निर्भर रहने का निश्चय किया, और अपने पुत्र से बोली कि वह वनवासी अपने भाई से गुरु को भेंट देने के लिए कुछ माँगे।

दूसरे दिन सदा की भाँति जब गोपाल जंगल में अपने चरवाहे भाई से मिला और जब वे थोड़ी देर तक खेल-कूद चुके, तब गोपाल ने अपने भाई से बताया कि उसे क्या दुःख है और अपने गुरुजी को देने के लिए कोई भेंट माँगी। चरवाहे बालक ने कहा, "भैया गोपाल! तुम तो जानते ही हो कि मैं एक मामूली चरवाहा हूँ और मेरे पास धन नहीं है, लेकिन यह मक्खन की हँड़िया तुम लेते जाओ और अपने गुरुजी को भेंट कर दो।"

गोपाल इस बात से बहुत खुश हुआ कि अब उसके पास भी गुरुजी को भेंट देने के लिए कोई चीज हो गयी है, लेकिन इस बात की उसे और भी खुशी थी कि यह भेंट उसे अपने वनवासी भाई से प्राप्त हुई है। वह खुश-खुश गुरु के घर की तरफ बढ़ा और जहाँ बहुतसे लड़के गुरुजी को अपनी-अपनी भेंट दे रहे थे, वहीं सबसे पीछे उत्सुकता से खड़ा हो गया। सबके पास भेंट देने को विभिन्न प्रकार की अनेक वस्तुएँ थीं और किसी को भी बेचारे अनाथ बालक की भेंट की तरफ देखने तक

अभिनय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की फुरसत न थी। यह उपेक्षा अत्यन्त असह्य थी। गोपाल की आँखों में आँसू आ गये। तभी सौभाग्य से गुरुजी की दृष्टि उसकी ओर गयी। उन्होंने गोपाल के हाथ से मक्खन की हाँड़ी ले ली और उसे एक बड़े बरतन में उँड़ेल दिया। लेकिन आश्चर्य कि हाँड़ी फिर भर गयी! तब फिर उन्होंने उसे उँड़ेला और वह फिर भर गयी। औरं इस तरह से होता गया। जब तक वे मक्खन उँड़ेलकर खाली करें कि वह फिर भर जाती थी।

इससे सभी लोग चकित रह गये। तब गुरुजी ने अनाथ बालक को गोद में उठा लिया और मक्खन की हाँड़ी के बारे में पूछा। गोपाल ने अपने वनवासी चरवाहे भाई के बारे में सब कुछ बता दिया कि कैसे वह उसकी पुकार का जवाब दिया करता था, कैसे वह उसके संग खेला करता था और अन्त में बताया कि कैसे उसने मक्खन की हाँड़ी दी।

गुरुजी ने गोपाल से कहा कि वह उसे जंगल में ले चलकर अपने भाई को दिखलाये। गोपाल के लिए इससे बढ़कर खुशी की बात और क्या हो सकती थी!

उसने अपने भाई को पुकारा कि वह सामने आये। लेकिन उस दिन उत्तर में कोई आवाज नहीं आयी। उसने कई बार पुकारा। कोई उत्तर नहीं। और वह जंगल में अपने भाई से बात करने के लिए घुसा। उसे भय था कि उसके गुरुजी कहीं उसे झूठा न मान लें। तब बहुत दूर से आवाज आयी :

'गोपाल! तुम्हारी माँ और तुम्हारे प्रेम एवं विश्वास के कारण ही मैं तुम लोगों के पास आया था, लेकिन अपने गुरुजी से कह दो कि उन्हें अभी बहुत दिनों तक इन्तजार करना होगा।'

आम्नाय-वशंगत
सरस्वति, का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (सुविस्तृत जीवनचरित)—तीन खण्डों में।
प्रथम खण्ड (द्वि. सं.) रु. ११०, द्वितीय खण्ड (द्वि. सं.) रु. ११, तृतीय खण्ड (द्वि. सं.) रु. ९.००

श्रीरामकृष्णलीलामृत (जीवनचरित)—दो भागों में।
प्रथम भाग (पंचम सं.) रु. ५.५० द्वितीय भाग (पं. सं.) रु. ६.००

श्रीरामकृष्णवचनामृत (तीन भागों में) प्रथम भाग (पं. सं.) रु. ७.००
द्वितीय भाग (च. सं.) रु. ८.००, तृतीय भाग (तृ. सं.) रु. १०.००

माँ सारदा—स्वामी अपूर्वानन्दकृत (द्वि. सं.) ..	रु. ६.००
श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ—स्वामी अपूर्वानन्दकृत (द्वि. सं.) ..	रु. ३.६०
विवेकानन्द-चरित—सत्येन्द्रनाथ मजूमदारकृत (ष. सं.) ..	रु. ७.५०
श्रीरामकृष्ण—भक्तमालिका (प्रथम भाग) ..	रु. ८.५०
धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द (द्वि. सं.) ..	रु. ५.००
परमार्थ प्रसंग—स्वामी विरजानन्दकृत (द्वि. सं.) ..	रु. ३.५०
शिवानन्द-स्मृतिसंग्रह—संकलक स्वामी अपूर्वानन्द (प्रथम भाग)	रु. ७.५०
(द्वितीय भाग)	रु. ८.५०
आचार्य शंकर—स्वामी अपूर्वानन्द ..	रु. ४.५०

स्वामी विवेकानन्दकृत पुस्तकें

विवेकानन्द संचयन ..	रु. ७.५०
भारत में विवेकानन्द—(भारतीय व्याख्यान) (च. सं.)	रु. ५.२५
विवेकानन्द—राष्ट्र को आह्वान (द्वितीय संस्करण)	रु. ०.५०
विवेकानन्दजी के संग में (च. सं.)	रु. ६.५०

राजयोग—(पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित) (पं. सं.)	४.००
ज्ञानयोग (पं. सं.)	३.७५
धर्मतत्त्व (द्वि. सं.)	२.००
भक्तियोग (स. सं.)	१.५०
कर्मयोग (अष्टम सं.)	२.२५
प्रेमयोग (स. सं.)	२.००
सरल राजयोग (च. सं.)	०.६०
पत्रावली (प्र. भा, द्वि. सं.)	५.२५
पत्रावली (द्वि. भा., द्वि. सं)	४.२५
देववाणी (तृ. सं.)	३.००
भगवान बुद्ध का संसार को सन्देश एवं अन्य व्याख्यान	२.२५
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप (च. सं.)	२.२५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ (चतुर्दश सं.)	१.७५
धर्मविज्ञान (च. सं.)	२.००
वेदान्त (द्वि. सं.)	२.००
धर्मरहस्य (पं. सं.)	१.३०
आत्मतत्त्व (द्वि. सं.)	१.३०
विवेकानन्दजी की कथाएँ (पं. सं.)	१.८०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (स. सं.)	१.७५
हिन्दू धर्म (ष. सं.)	२.२५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवितावली (च. सं.)	२.२०
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त (च. सं.)	१.६५
परिव्राजक (मेरी भ्रमण-कहानी) (ष. सं.)	१.७५
स्वाधीन भारत जय हो (च. सं.)	१.६०
प्राच्य और पाश्चात्य (स. सं.)	१.८०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	१.६५
भगवान रामकृष्ण-धर्म तथा संघ (च. सं.)	१.७५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में (तृ. सं.)	१.८०
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रवन्ध	१.३०
भारतीय नारी (स. सं.)	१.५०
चिन्तनीय वातें (तृ. सं.)	१.४०
जाति, संस्कृति और समाजवाद (च. सं.)	१.८०
विविध प्रसंग (द्वि. स.)	२.००
मेरे गुरुदेव (अष्टम सं.)	१.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन (द्वि. सं.)	०.९०
शिक्षा (स. स.)	१.००
हिन्दू धर्म के पक्ष में (च. सं.)	०.७५
हमारा भारत (च. सं.)	०.७५
शिकागो वक्तृता (ए. सं.)	०.८०
पवहारी वावा (च. सं.)	०.६०
वर्तमान भारत (स. सं)	०.८०
मरणोत्तर जीवन (पं. सं.)	०.७०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ (पं. सं.)	०.६०
ईशदूत ईसा (तृ. सं.)	०.५०
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता (तृ. सं.)	२.००

पॉकेट-साइज पुस्तकें

सूक्तियाँ एवं सुभाषित (द्वि.सं.)	१.००
शक्तिदायी विचार (स. सं.)	०.७०
मेरी समरनीति (पं. स.)	०.७५
विवेकानन्दजी के उद्गार (ष. सं.)	०.७५
मेरा जीवन तथा ध्येय (स. सं.)	०.६०

श्रीरामकृष्ण-उपदेश—स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा संकलित (स. सं.)	१.००
रामकृष्ण संघ—आदर्श और इतिहास—स्वामी तेजसानन्द, (च. सं.)	१.००

साधु नागमहाशय— (भगवान श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग गृही शिष्य) नया संस्करण	३.२५
गीतातत्त्व—स्वामी सारदानन्द (च. स.)	३.५०
भारत में शक्तिपूजा—स्वामी सारदानन्द, (द्वि. सं.)	१.७०
वेदान्त—सिद्धान्त और व्यवहार—स्वामी सारदानन्द (तृ. सं.)	०.५०

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर-१२

१- आत्मानुभूति - ४४
२- प्रतिस्था - ४५
२-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्रा
भरतनिधि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi